मुद्रक—
कुन्ददास गुप्त 'प्रभाकर'
म टेबुल प्रेस, बनारस।

निवेदन

'हालाँ झालाँ रा कुँडळिया' डिंगल भाषा के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों में से है। यह ग्रंथ जितना भाषा कविता की दृष्टि से उत्तम है उतना ही लोक प्रिय भी है। राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा अभागा चारण मिलेगा जिसे इसके दो एक पद्य कंठाग्र न हों। राजपूत आदि कुछ अन्य जातियों के लोगों में भी इसका यथेष्ट आदर है।

आज से कोई पंद्रह वर्ष पूर्व, सन् १९२५ ई० में, इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति पहली बार मेरे देखने में आई थी। इसकी भाव-मौलिकता और भाषा सुन्दरता को देखकर मैं चकित रह गया और उसी समय से इसको प्रकाश में लाने का इरादा हुआ। परन्तु अन्य अधिक आवश्यक साहित्यिक कार्यों में व्यस्त होने की वजह से इसके संपादन का कार्य हाथ में न ले सका। लेकिन इसकी प्राचीन लिखित प्रतियों की टोह में बराबर रहा। फल-स्वरूप इसकी तेरह प्रतियाँ मुझे देखने को मिलीं जिनमें कुछ अधूरी अथवा अशुद्ध लिखी हुई थीं और कुछ में लिपिकाल का उल्लेख नहीं था तथा शकल-सूरत से बहुत आधुनिक मालूम पड़ती थीं। केवल पाँच प्रतियाँ ऐसी थीं जिनको मैंने प्रामाणिक एवं अपने काम के लिये उपयोगी पाया और इन्हीं के आधार पर प्रस्तुत संस्करण तैयार किया गया है। इन पाँचों प्रतियों का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है—

A: उदयपुर के महंत श्री प्रयागदासजी के अस्थल की प्रति। प्राप्त प्रतियों में यह सबसे प्राचीन है। गुटकाकार है और घसीट लिपि में

लिखी हुई है। इसके अक्षर भद्दे पर पाठ प्रायः शुद्ध है। इसमें ५० पद्य हैं। यह मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह (प्रथम) के शासन-काल में उदयपुर में लिखी गई थी। इसका लिपि काल सं० १६९८ है। इसमें ईसरदास की भाषा कविता बहुत-कुछ अपने मूल रूप में सुरक्षित है।

R. स्वर्गीय पण्डित रतीलालजी अंताणी की प्रति। यह प्रति पक्की कालीस्याही से पुराने बाँसी कागज़ पर लिखी हुई है। घसीट गुजराती लिपि में होने से इसके पढ़ने में कुछ कठिनाई होती है। यह राजनगर (अहमदाबाद) में लिपिबद्ध हुई थी। इसमें भी ५० पद्य हैं। इसका लिपिकाल सं० १७३६ है।

C: कलकत्ते के सुप्रसिद्ध सेठ सूरजमल नागरमल के पुस्तकालय की प्रति। यह प्रति हमें रायबहादुर सेठ श्री रामदेवजी चोखाणी के सौजन्य से देखने को मिली। इसकी लिपि सुस्पष्ट और सुन्दर है। पाठ भी प्रायः शुद्ध है। कहीं-कहीं छंदोभंग है। इसमें केवल ३० पद्य हैं। इनका लेखन-समय सं० १८७५ है।

D. देवलिया प्रतापगढ़ की प्रति। यह प्रति बहुत साफ़ लिखी हुई है। इसमें छंदोभंग प्रायः नहीं है। यह प्रतापगढ़-निवासी जुझारसिंह नामक किसी चौहाण सरदार के पठनार्थ सं० १८८१ में लिखी गई थी। इसके लेखक का नाम रौड़जी था। इसमें भी ५० पद्य हैं।

S. उदयपुर के सरस्वती भंडार की प्रति। यह सजिल्द और पुस्तकाकार प्रति है। इसकी लिखावट बहुत सुन्दर है। इसकी पद्य-संख्या ५३ है। इसमें लिपिकाल का उल्लेख नहीं है। पर यह मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह (सं० १९३१-४१) के लिए लिखी गई थी। अतः इसका लेखन-समय सं० १९३१ और सं० १९४१ के बीच में ठहरता है।

प्रायः देखा गया है कि जो ग्रंथ जितना अधिक लोक-प्रचलित होता है उसकी हस्तलिखित प्रतियों में उतना ही अधिक पाठान्तर भी मिलता

है। क्योंकि अपनी रुचि एवं उच्चारण की सुविधा के अनुसार लोग उसमें परिवर्तन करते रहते हैं और उसका मूल रूप बराबर विकृत होता रहता है। ऐसे ग्रंथ के संपादन के समय पाठ-निर्धारण में बड़ी कठिनाई होती है और ठीक पाठ को चुनना बहुत दुष्कर हो जाता है। मुझे भी इस कठिनाई का सामना करना पड़ा और कहीं-कहीं तो ठीक शब्द के चुनने में कई घंटे लग गये। यथा—

"सेल धमोड़ा किम सह्या, किम सहिया गज दंत।"

'धमोड़ा' के स्थान पर S प्रति में 'धमका', R प्रति में 'धमक्का और D प्रति में 'धमाका' शब्द देखने में आये। ये चारों ही शब्द प्रायः समानार्थी हैं और प्रसंग में ठीक बैठते हैं। ऐसे स्थानों पर मैंने सबसे प्राचीन A प्रति का आश्रय लेना उचित समझा और अधिकतर उसी के पाठ को ग्रहण किया है।

पुस्तक विश्व-विद्यालयों के पाठ्य क्रम में भी रखी जायगी यह सोचकर मैंने शब्दार्थ, भावार्थ, टीका-टिप्पणी इत्यादि देकर इसे विद्यार्थियों की दृष्टि से उपयोगी बनाने की भरसक चेष्टा की है। प्रारंभ में भूमिका लगा दी है जिसमें ईसरदास की जीवनी एवं इस ग्रंथ की विशेषताओं आदि पर प्रकाश डाला गया है। अंत में शब्द-कोश जोड़ दिया है।

इतना उत्कृष्ट और लोकप्रिय होते हुए भी यह ग्रंथ क्यों अभी तक अप्रकाशित पड़ा रहा, यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी। लेकिन अब आ गई। ग्रंथ कुछ कठिन है। इसलिए संपादन के लिये इसे हाथ में लेने की हिम्मत किसी को न हुई। यदि किसी ने कभी कोशिश की भी होगी तो उसे बीच ही में छोड़नी पड़ी। राठौड़ पृथ्वीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' डिंगल भाषा का एक बहुत ही कठिन ग्रंथ माना जाता है। परन्तु यह ग्रंथ उससे भी कठिन है। इसमें भाषा और भाव दोनों की कठिनता है। लेकिन ईश्वर की अनुकंपा से यह कठिनत

अब दूर हो गई है और डिंगल काव्य-प्रेमी सज्जन इसका आस्वादन कर सकेंगे इसकी मुझे अत्यन्त खुशी है।

अंत में गुजरात काठियावाड़ के सुप्रसिद्ध विद्वान, भूतपूर्व सहकारी संपादक 'चारण,' श्रीमान् ठाकुर खेतसिंहजी मिश्रण को धन्यवाद देना भी मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की प्रेस कॉपी को आद्योपान्त पढ़ा और अनेक स्थानों पर सुधार-संशोधन किया एवं अर्थ-स्पष्टीकरण में मेरी सहायता की। यदि ठाकुर साहब मेरी मदद न करते तो यह ग्रंथ कुछ दिन और अमुद्रित पड़ा रहता। इस सौजन्य के लिए मैं ठाकुरसाहब का अत्यंत आभारी हूँ।

उदयपुर (मेवाड़)
ता० १२–१–५०

मोतीलाल मेनारिया

भूमिका

चौदहवीं शताब्दी की बात है। मारवाड़ में राव धूहड़ (सं० १३४९-६६) राज्य करते थे। उन दिनों चंद नाम का एक व्यक्ति वहाँ रहता था। उसका पिता भाटी राजपूत और माँ जाति की चारण थी। राव धूहड़ ने उसे अपना पोलपात[1] बनाया और बारह गाँव जागीर में दिये। चंद को उसकी इच्छा के विरुद्ध, रोहड़कर (ज़बरदस्ती), पोलपात बनाया गया था। इसलिए उसकी संतान रोहड़िया कहलाने लगी। बाद में राव धूहड़ के पुत्र राव रायपाल (सं० १३६६-७०) ने इन्हें बारहठ[2] का उपटंक प्रदान किया और ये रोहड़िया बारहठ नाम से पुकारे जाने लगे। तभी से रोहड़िया बारहठ राठौड़ों के पोलपात बने हुए हैं और राजस्थान के चारणों में बहुत प्रतिष्ठित माने जाते हैं—

सोदा नै सीसोदिया, रोहड़ नै राठौड़।
दुरसावत नै देवड़ा, ठावा ठावा ठौड़॥

---

१ द्वार पर दान लेने का अधिकारी चारण।

२ बारहठ उन चारणों को कहते हैं जिनको राजपूत लोग अपनी पोल का नेग देते हैं। जब दुलहा विवाह करने के लिए आता है तब दुलहिन के पिता का पोलपात चारण उसके दरवाजे पर खड़ा रहता है। दुलहा जिस हाथी अथवा घोड़े पर चढ़कर तोरण बंदाता है उस हाथी अथवा घोड़े को लेने का अधिकार उस चारण का होता है। 'बार' दरवाज़े को कहते हैं। और दरवाजे पर हठ करके नेग लेने वाला चारण बारहठ कहलाता है। डिंगल साहित्य में प्रयुक्त 'बारठ' 'बारैठ' आदि शब्द इसी 'बारहठ' के रूपान्तर हैं।

पद से सातवीं पीढ़ी में ईसरदास हुए। ये भगवान के परम भक्त और प्रतिभावान पुरुष थे। इनका जन्म मारवाड़ राज्य के भाद्रेस नामक गाँव में सं० १५९५ में हुआ था जिसकी साक्षी का यह दोहा प्रसिद्ध है—

पनरासौ पिच्चाणवै, जनम्यौं ईसरदास।
चारण वरण चकार में, उण दिन हुवौ उजास॥

इनके पिता का नाम सूजाजी, पितामह का गोधाजी और प्रपितामह का अमराजी था। डिंगल भाषा के सुप्रसिद्ध कवि हरसूर इनके बड़े काका और आशानद छोटे काका थे।

ईसरदास की उम्र जब अठारह वर्ष की थी तब इनके माता-पिता का देहान्त हो गया था। इसलिए इनके काका आशानद ने इन्हें पढ़ा-लिखाकर होशियार किया और डिंगल भाषा में कविता करना भी सिखाया।

कोई २०–२१ वर्ष की उम्र में ईसरदास अपने काका आशानद के साथ द्वारका की यात्रा के लिए घर से निकले। रास्ते में जामनगर पड़ता था। रात्रि को दोनों वहाँ जाकर टिके। उन दिनों वहाँ रावळ जाम (सं० १५६१-१६१८) राज करते थे। वे बड़े गुणग्राही और सरस्वती-उपासक थे। उनको जब मारवाड़ के इन दो प्रसिद्ध कवियों के आने की सूचना मिली तब उन्होंने इन्हें अपने राज दरबार में बुलाया और बड़ी आवभगत की। कुछ दिन ये रावळजी के मेहमान रहे। फिर द्वारका चले गये।

द्वारका से वापस लौटने पर रावळ जाम ने ईसरदास को स्थायी रूप से अपने पास रख लिया। उन्होंने इन्हें अपना पोलपात बनाया और क्रोड़पसाव[3] तथा सचाणा नामक एक गाँव प्रदान कर इनकी

---

३ प्राचीन समय में चारण भाटों को जो दान दिया जाता था उसे वे अत्युक्ति से लाख पसाव, क्रोड़ पसाव आदि कहते थे। पूरा दान नक़द रुपयों

ऽतिष्ठा बढ़ाई। इस विषय का एक दोहा लोगों में प्रचलित है जिसे ईसरदास रचित बतलाया जाता है। दोहा यह है—

क्रोड़ पसाव ईसर कियौ, दियौ सचाँणौ गाम।
दता सिरोमण देखियौ, जगसर रावळजाम॥

जामनगर में रहने से ईसरदास को अतुल यश संपत्ति ही नहीं मिली, बल्कि ज्ञानोपार्जन की दृष्टि से भी भरपूर लाभ हुआ। रावळजाम के दरबार में पीताम्बर भट्ट नाम के एक पंडित अधिवास करते थे। वे संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान और दर्शन, धर्मशास्त्र, पुराण आदि के असाधारण ज्ञाता थे। उन्होंने इन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान कराया और भागवत आदि पुराण पढ़ाये। अपने रचे 'हरिरस' में ईसरदास ने पीताम्बर भट्ट के आभार को स्वीकार किया है—

लागूँ हूँ पहली लुळे, पीताम्बर गुर पाय।
भेद महारस भागवत, पामूँ जास पसाय[४]॥

ईसरदास कोरे कवि और विद्वान् ही न थे, भक्त भी थे। कहते हैं कि इनको कुछ ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त थीं जिनके बल से ये मरे हुए व्यक्तियों को जिला देते थे। इस सम्बन्ध की कुछ दंतकथाएँ भी गुजरात, काठियावाड़ और राजस्थान के लोगों के मुँह से सुनने में आती हैं। एक दंतकथा हम यहाँ देते हैं।

एक बार ईसरदास जामनगर से अमरेली जाते हुए रास्ते में वेणू

में नहीं दिया जाता था। हजार-दो हजार के करीब रोकड़ रुपया देकर शेष रकम की पूर्ति जमीन, हाथी, घोड़े, सिरोपाव आदि देकर की जाती थी। छोटा दान लाखपसाव, उससे बड़ा क्रोड़पसाव और सबसे बड़ा अरबपसाव कहलाता था। 'पसाव' शब्द संस्कृत 'प्रसाद' का रूपांतर है।

४ जिसकी कृपा से मैंने भगवत् संबंधी महारस का भेद प्राप्त किया उस पीताम्बर गुरु के चरणों को मैं सबसे पहले झुककर स्पर्श करता हूँ।

नदी के किनारे एक छोटे से गाँव में साँगा नामक एक राजपूत के यहाँ ठहरे। साँगा ने इनकी बड़ी आवभगत की और जब ये वहाँ से आगे जाने लगे तो उसने इनसे कहा कि मैं बहुत गरीब हूँ और आपको भेंट में देने योग्य कोई वस्तु मेरे घर में नहीं है। केवल एक कंबल है जिसे मैं आपको देना चाहता हूँ। ईसरदास ने कहा कि उस कंबल को वापस लौटते समय हम तुमसे ले जायँगे। तैयार रखना। यह कहकर वे वहाँ से रवाना हो गये।

इसी बीच में ऐसा हुआ कि एक दिन संध्या को जब साँगा अपने पशुओं को जंगल में चराकर घर लौटते समय वेणू नदी को पार कर रहा था तब नदी में बाढ़ आ गया और वह और उसके पशु उसमें बह गये। साँगा ने बाहर निकलने के लिए बहुत हाथ-पाँव पटके पर उसकी एक न चली। अंत में जब उसने देख लिया कि उसकी मृत्यु निश्चित है तब उसने नदी के किनारे पर खड़े अपने ग्राम-वासियों से चिल्लाकर कहा कि मैं मर रहा हूँ पर मेरे मन में एक इच्छा रह गई है। वह यह कि अपने वादे के मुताबिक़ ईसरदास को मैं कम्बल न दे सका। परन्तु तुम लोग घर पहुँचकर मेरी माँ से कह देना कि ईसरदास के लिए जो कम्बल रखा हुआ है वह उनके वापस लौटने पर उन्हें देदे। यह कहते कहते साँगा की साँस टूट गई और वह पानी में डूब गया।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् ईसरदास साँगा के घर पहुँचे। साँगा की माँ ने उनके लिए भोजन तैयार किया। परंतु भोजन के आसन पर बैठने के पहले ईसरदास ने पूछा कि साँगा कहाँ है, मैं उसके साथ बैठकर भोजन करूँगा। यह सुनकर साँगा की माँ का कलेजा भर आया! वह टपाटप आँसू गिराने लगी। अत में साँगा की दुखद मृत्यु की सारी घटना उसने ईसरदास को सुना दी। सुनकर ईसरदास बोले—"मुझे वह स्थान बताओ जहाँ साँगा डूबा है"। माँ ने साथ जाकर वह स्थान उन्हें बता दिया। वहाँ खड़े होकर ईसरदास ने ज़ोर से पुकारा—"साँगा!

तुम कहाँ हो। तुम्हारी प्रतिज्ञा के अनुसार मैं तुमसे कम्बल लेने आया हूँ। आकर कम्बल मुझे दो और अपना वादा पूरा करो"। सामने से आवाज़ आई - "आ रहा हूँ"। और थोड़ी देर में साँगा अपने पशुओं सहित आता हुआ दिखाई दिया। आकर उसने ईसरदास के पाँव पकड़ लिये। फिर दोनों घर गये और साथ बैठकर भोजन किया। इस घटना से सबंधित कुछ दोहे भी प्रचलित हैं। चार दोहे यहाँ दिये जाते हैं—

नदी वहती जाय, सादज साँगरिए दियौ।
कहज्यौ म्हारी माय कवि नै दीजै कामळो ॥१॥
वाहण[५] वहतौ जाय, साद दियतौ साथियाँ।
कहज्यौ जायर माय, कवि नै देवै कामळी ॥२॥
वहतै नद पाणीह, साँगरिए दीधौ सबद।
कामळ सहनाणीह, दीजौ ईसरदास नै ॥३॥
ईसर री आवाज, साँगा जळ थळ साँभळे।
कामळ देवण काज, वेगौ वळ सिध कर वयण[६] ॥४॥

इस तरह की और भी कुछ दन्तकथाएँ लोगों में प्रचलित हैं। परन्तु उनको यहाँ देना व्यर्थ है क्योंकि उनमें सार की बात कुछ नज़र नहीं आती। वे भावुक भक्त लोगों के मतलब की हो सकती हैं। तथ्यान्वेषी अध्येताओं के काम की नहीं हैं।

---

५ वाहण = बहने वाली, नदी।

६ नदी में बहकर जाते हुए साँगा ने आवाज़ दी कि मेरी माँ से कहना कि वह कवि को कंबल दे दे ॥१॥ नदी में बहकर जाते हुए साँगा ने अपने साथियों को आवाज़ दी कि जाकर मेरी माँ से कहना कि वह कवि को कंबल देवे ॥२॥ नदी में बहते हुए साँगा ने आवाज़ दी कि स्मृति-चिह्न स्वरूप कम्बल ईसरदास को दे देना ॥३॥ हे साँगा! ईसरदास की आवाज़ को जल-थल में सुनकर कम्बल देने के लिए जल्दी वापस लौट और अपने वचन को पूरा कर ॥४॥

ईसरदास ने दो विवाह किये थे। इनसे इनके पाँच लड़के हुए—जगाजी, चूँडाजी, कान्हजी, जैसाजी, और गोपालजी[७]।

लगभग चालीस वर्ष तक ईसरदास जामनगर में रहे। तदनन्तर अपने जन्मस्थान भाद्रेस चले गये और गुड़ा के पास लूँणी नदी के किनारे एक कुटिया बनाकर उसमें रहने लगे। वहीं सं० १६७५ के आस पास ८० वर्ष की आयु में इनका देहावसान हुआ।

ईसरदास भक्त कवि थे। इन्होंने ईस-भक्ति विषयक रचना अधिक की है। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) हरिरस
(२) छोटा हरिरस
(३) बाल लीला
(४) गुण भागवत हंस
(५) गरुड़ पुराण
(६) गुण आगम
(७) निंदा-स्तुति
(८) वैराट
(९) रास कैलास
(१०) सभापर्व
(११) देवियाण
(१२) हालाँ झालाँ रा कुँडलियाँ[८]

---

७ 'श्री यदुवंश प्रकाश' में ईसरदास के धूना नामक एक और पुत्र का का उल्लेख है। परन्तु अन्य इतिहास-ग्रंथों से इसकी पुष्टि नहीं होती।

८ उदयपुर के सरस्वती भंडार में ईसरदास नाम के किसी कवि के लिखे हुए छह छोटे छोटे ग्रंथ सुरक्षित हैं। इनके नाम ये हैं—गुरु महिमा, मनशिक्षा, विरह विलाप, विरह वेदना, करुणारस और फुटकर पद। इन ग्रन्थों की रचना-

इनमें 'हालाँ झालाँ रा कुँडळिया' ईसरदास की सर्वोत्कृष्ट कृति है। यह डिंगल भाषा के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों में से है। इसकी रचना के सम्बन्ध में निम्नलिखित किंवदंती प्रसिद्ध है।

एक बार हलवद[९]-नरेश झाला रायसिंह धोळ[१०] राज्य के ठाकुर हाला जसाजी से मिलने के लिए धोळ गये। ये उनके भानजे होते थे[११]। एक दिन दोनों बैठकर चौपड़ खेलने लगे। इतने में कहीं से नगाड़े की आवाज़ इनके कानों में पड़ी। सुनकर जसाजी क्रोध से झल्ला उठे और बोले—"यह ऐसा कौन ज़ोरावर है जो मेरे गाँव की सीमा में नगाड़ा बजा रहा है?" फौरन नौकर को भेजकर पता लगवाया गया। नौकर ने आकर कहा—"हुज़ूर! मकनभारती (मुकुन्द भारती) नामक दिल्ली के किसी मठाधीश की जमात हिंगलाज की यात्रा को जा रही है और उसी का नगाड़ा बज रहा है।" यह सुनकर जसाजी बोले—"तब कोई हर्ज़ नहीं है। नगाड़ा बजने दो।"

शैली हमारे इन बारहठ ईसरदास की रचना-शैली से मिलती है। परंतु इनमें कहीं कवि का परिचय दिया हुआ नहीं है। और न नाम के आगे बारहठ आदि लिखा हुआ है। अतः यह कहना कठिन है कि ये दोनों दो भिन्न व्यक्ति हैं अथवा एक।

९ हलवद राज्य का आधुनिक नाम ध्रांगध्रा में राजधानी होने के कारण ध्रांगध्रा है। झाला राजपूतों का यह राज्य काठियावाड़ में है।

१० धोळ राज्य भी काठियावाड़ में है। यह जाडेजा राजपूतों का राज्य है। जाडेजा राजपूतों को हालाजी के वंशज होने के कारण 'हाला' भी कहते हैं।

११ 'श्री यदुवंश प्रकाश' में रायसिंह को मामा और जसाजी को भानजा बताया गया है जो ग़लत है।

झाला रायसिंह अभी तक चुपचाप बैठे थे। जसाजी के अन्तिम वाक्य को सुनकर कहने लगे—"यह तो गाँव का रास्ता है। सैकड़ों आदमी आते जाते रहते हैं। नगाड़े भी बजते ही हैं। इसमें नाराज होने की कौन सी बात है? यदि यह किसी जमात का नगाड़ा न होकर किसी राजा का नगाड़ा होता तो आप क्या कर लेते?" जसाजी ने उत्तर दिया—"मैं उन नगाड़ों को तुड़वा कर फिंकवा देता। मेरे राज्य में किसी दूसरे राजा का नगाड़ा नहीं बज सकता।"

यह गर्वोक्ति रायसिंह को चुभ गई। बोले—"अच्छी बात है। युद्ध के लिए तैयार रहिए। इसी गाँव में झाला रायसिंह का नगाड़ा बजेगा।" चौपड़ खेलना बंद हो गया। रायसिंह उठकर हलवद चले गये।

अपनी प्रतिज्ञानुसार कुछ दिनों बाद रायसिंह अपने दलबल सहित धोळ जा पहुँचे और नगाड़ा बजाया। अपने भानजे पर हथियार उठाना अनुचित समझ कर जसाजी ने उन्हें बहुत समझाया-बुझाया और वापस लौट जाने को कहा। परन्तु उन्होंने एक न सुनी। निदान जसाजी को रणभूमि में उतरना पड़ा। भारी युद्ध और भयंकर कटाकटी हुई। अंत में जसाजी वीरता से लड़ते हुए काम आए और रायसिंह के भी बहुत से घाव लगे। यह घटना सं० १६२० की है।

कहते हैं कि युद्धारंभ से पहले जसाजी और रायसिंह दोनों ईसरदास के पास गये और युद्ध का आँखों देखा वृत्तान्त लिखने के लिए उनसे प्रार्थना की। पहले तो वे मना कर गये पर बाद में बहुत कहा सुनी करने पर मंजूर कर लिया। फल स्वरूप 'हालाँ झालाँ रा कुँडळिया' की रचना हुई जिसने जसाजी, रायसिंह और ईसरदास तीनों के नाम को अमर कर दिया है।

जसाजी और रायसिंह लड़े थे, यह लड़ाई सं० १६२० में हुई थी और जसाजी इस झड़प में मारे गये थे, ये बातें सही हैं और इतिहास-ग्रंथों में इनका उल्लेख मिलता है। परन्तु इस लड़ाई का जो कारण

उल्लिखित किंवदंती में बताया गया है वह कुछ शंकास्पद है और इसके संबंध में विद्वानों में मतभेद भी है। इसमें संदेह नहीं कि इस तरह के तुच्छ कारणों को लेकर हुए युद्धों के अनेक 'उदाहरण' राजपूत जाति के इतिहास में मिलते हैं। परन्तु केवल इसीलिए इसको भी स्वीकार कर लेना कुछ अनुचित जान पड़ता है। इस सम्बन्ध में कुछ अधिक छान-बीन की आवश्यकता है। गुजरात—काठियावाड़ के विद्वानों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

इधर कुछ दिनों से विद्वानों में यह चर्चा चल पड़ी है कि यह ग्रंथ, हालाँ झालाँ रा कुंडळिया, ईसरदास का लिखा हुआ नहीं है, उनके काका आशानंद का बनाया हुआ है। इस चर्चा का सूत्रपात पहले-पहल स्वर्गीय ठाकुर किशोरसिंह बारहठ ने किया था। अपने सम्पादित 'हरिरस' की प्रस्तावना में उन्होंने जो शब्द इस विषय में लिखे हैं उनको हम ज्यों के त्यों यहाँ उद्धृत करते हैं। वे शब्द ये हैं.—

"राजपूताना प्रान्त में यह बात प्रसिद्ध है कि 'सूर सतसई' जिसको 'हालाँ झालाँ रा कुंडळियाँ' भी कहते हैं बारहठ ईसरदास ही का रचना किया हुआ काव्य-ग्रंथ है। परन्तु काठियावाड़ में उसको उनके चाचा कवि आशानंद रचित माना जाता है। जब मुझको अपनी सौराष्ट्र-यात्रा में यह बात मालूम हुई तब मैंने उस काव्य को आशानंद की कविता से मिलाकर जाँचा। तुलना करने से मुझको काठियावाड़-निवासी विद्वानों की सम्मति उचित जान पड़ी। क्योंकि ईश्वरदास की कविता केवल भक्तिरस और प्रसादगुणयुक्त है, ओज तो उसमें नाममात्र को भी नहीं है। उधर आशानंद की कविता ओज से गुथी ओत-प्रोत है और 'हालाँ झाला रा कुंडळिया' उनकी उत्तर कविता से पूर्णत मिलती है। राजपूताना में इस संबध में जो भ्रम फैला हुआ है उसका कारण यह प्रतीत होता है कि ईसरदास को काठियावाड़-निवासी ईशानंद भी कहा करते हैं। इसलिए आशानंद के साथ ईशानन्द का शब्द साम्य होने

से तथा ईसरदास के काठियावाड़ में अधिक रहने से यहाँ के लोगों का ऐसा विश्वास हो गया।"[१२]

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' को ईसर-दास रचित न मानने का आधार केवल पारहठजी का अनुमान है, कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं। परन्तु उनका यह अनुमान भी भ्रमात्मक है जिसमें निम्नलिखित कारण हैं।

(१) यह ईसरदास की एक अत्यंत लोक प्रिय रचना है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान के विभिन्न पुस्तकालयों, राजभंडारों, रामद्वारों, चारण-भाटों के घरों आदि में देखने को मिलती हैं। तेरह प्रतियाँ हमारे भी देखने में आई हैं। इन सभी में ईसरदास का नाम दिया हुआ है। इनमें एक प्रति काफी प्राचीन है। यह उदयपुर के प्रयागदासजी के स्थल में सुरक्षित है इसका पुष्पिका—लेख इस प्रकार है—

"इती श्री हालां झालां रा कुंडलियाँ ईसरदास बारठ चारण कीत ॥ संपुरण ॥ समापत ॥ पोथी लीखतं भगत रयामदास धमंडीजी प्रतापे पठनारथं राठोड़ भाणजी लाडखान सुत उदयापु (र) मध्ये राणा श्री जगतस्यंघजी धीजै राजमस्तु कल्याणमस्तु आयुर्बलरस्तु सुभंभव ॥सं० १६९८ ब्रषे मास अषाढ़ वद ११ बुधवार सुभ दिने ॥ श्लोक भरम भाव ॥ जदि अक्षरं पदंभ्रोष्टं मात्रा हीनं जदि भवे। सर्वंक्षु मता देवं: प्रसीध प्रमेश्वरं"॥

ईसरदास का देहान्त सं० १६७५ के लगभग हुआ था। इस हिसाब से यह प्रति उनकी मृत्यु होने के २३ वर्ष बाद की लिखी हुई है। इससे स्पष्ट है कि बहुत प्राचीन काल से यह ग्रंथ ईसरदास-रचित माना जाता आ रहा है और राजपूताना प्रान्त में जो इसे ईसरदास का बनाया हुआ बतलाया जा रहा है वह आधार-शून्य नहीं है।

---

१२. हरिरस की प्रस्तावना पृष्ठ २।

(२). ठा० किशोर सिंहजी ने इसे इसलिये भी ईसरदास-रचित नहीं माना है कि काठियावाड़ में इसको उनके चाचा महाकवि आशानंद रचित माना जाता है। काठियावाड़ में क्यों और कौन इसे आशानंद का बनाया हुआ बतलाते हैं, इसका स्पष्ट उल्लेख किशोर सिंहजी ने अपने उपरोक्त लेख में नहीं किया। संभव है, उधर के कुछ लोगों की ऐसी धारणा हो पर उधर के सभी विद्वान् ऐसा नहीं मानते। उदाहरण के लिए हम राज कवि मावदानजी-भीमजी भाई रतनू को लेते हैं। अपने लिखे 'श्री यदुवंश प्रकाश अने जामनगर नो इतिहास' में इन्होंने 'हालां झालां रा कुँडळिया' के कुछ अंश उद्धृत किये हैं और उन्हें ईसरदास-रचित बतलाया है।[१३]

प्राचीन समय में भी यह ग्रंथ काठियावाड़ की तरफ ईसरदास-रचित माना जाता था इसका पता एक दूसरी प्राचीन लिखित प्रति से मिलता है जो काठियावाड़ ही के आस पास लिखी गई थी। यह प्रति स्वर्गीय पंडित रत्नीलालजी अंताणी के पुस्तकालय में वर्तमान है। यह राज नगर (अहमदाबाद) में लिपि बद्ध हुई थी। इसका लिपि-काल सं० १७३६ है—

"इति श्री ईसरदास कृत हालाँ झालाँ रा कुँडळिआ संपूर्ण। 'सं० १७३६ चैत्र सुदी ९ दने वार भोमवासरे श्री राजनगर मध्ये लपी कृतं"।

(३) ठा० किशोरसिंह जी का यह कथन भी कि 'ईसरदास की कविता केवल भक्तिरस और प्रसादगुण युक्त है', पूर्ण सत्य नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि ईसरदास ने भक्ति और शान्तरस की कविता अधिक लिखी है। पर इनके लिखे वीररस के फुटकर गीतादि भी कई मिलते हैं जो बहुत ओज पूर्ण हैं और जिनकी भाषा एवं बंदिश 'हालाँ झालाँ रा कुँडळिया' से मिलती है। उदाहरण स्वरूप हलवद के राजा रायसिंह की प्रशंसा में लिखा हुआ उनका एक गीत हम यहाँ देते हैं—

---

१३. श्री यदुवंश प्रकाश, द्वितीय खंड, पृ० ६—८।

खेधे लग खत्री खग्ग हथ खारा[1] मद हो इन्द्र सभा मिळिया[2] ।
बीजी वार सरग पर बेऊ[3] साहेब—रासौ सॉफळिया ॥
इथि कज यळा ओथि कज अपछर[4] सूरन सकिया करी समास[5] ।
कदतळ राण रायधण कीधौ[6] कळह वळी दूजौ कविळास[7] ॥
धारा धामर हुवा अणियारौं[8] जोध न सकिया करी जुवा[9] ।
हेकाँ रासौ-बीको हुवैया[10] हेकाँ साहेब,पधौ हुवा[11] ॥
रासौ-साहेब धाग्या रूकै[12] सबळौ ई संसार सुवौ ।
मोटौ जुध हिक हुवौ माळियै[13] हेक वळी जुध सरग हुवौ ॥
आधौ आध अपछरा आवी सुर गध्रब किया समभाव,
मानावत-हामावत मिळिया इन्द्रसभा बिच बेठा आव[14] ॥

भावार्थ—हाथ में तीक्ष्ण शस्त्र धारण कर वैर से भरे हुए दो मद-मस्त क्षत्रिय साहेबजी और रायसिंह इन्द्रसभा में एकत्र हुए और दूसरी बार स्वर्ग में लड़ पड़े। इधर (जगत में) पृथ्वी के लिए और उधर स्वर्ग में,देवताओं के समावेश न कर सकने पर अप्सराओं के लिए झाला राज रायसिंह ने दूसरा युद्ध किया। इन तीखे योद्धाओं को

१ पाठा०—खड्ग हाथ ले खत्री वर सूँ। २ पाठा०—इद्रसभा में आख-दिया। ३ पाठा०—बीजी वार सरग पर बे बे। दूजो वार सरग में धोमे न ४ पाठा०—एय कज अलाओथी कज अपछर। वहै हराक हथ ओथ कई अप-छर। ५ पाठा०—सुर नर रहिया करी समास। ६ पाठा०—काछ कुँवर नै रासँग रायो। ७ पाठा०—दूजौ कियो कळह कविळास। ८ पाठा०—रणमल रणकूँभार मगदिया। ९ पाठा०—जोध करै सकिया न जुवा। १० पाठा०—देखो रासौ बीको बेहुवा। हालो देदी हुवा एकठा। ११ पाठा०—हालो रायधण हेक हुवा। १२ पाठा०—रायधण रान बाजिया रूकै। रासौ स हेब वाग्या रूकै। १३ पाठा०—मोटो जुध हुवौ माळियै। १४ पाठा०—मानाओत अनै हामा ओत इन्द्रसभा में बैठा आव।

रोकने का देवताओं ने प्रयत्न किया परंतु वे इनको अलग नहीं कर सके। फलतः एक ओर रायसिंह और बीकाजी हुए और दूसरी ओर साहेबजी और पत्राजी। रायसिंह और साहेबजी तलवार से लड़े जिससे संसार शोभायमान हुआ। इनका एक युद्ध मालिया में हुआ और दूसरा स्वर्ग में। आखिर देवताओं और गन्धर्वों ने दोनों में आधी, आधी अप्सराएँ बाँट कर समाधान किया। फलतः मानसिंह का पुत्र (रायसिंह) और हमीर का पुत्र (साहेबजी सब वैर भूलकर प्रेम पूर्वक एक दूसरे से) मिले और इन्द्रसभा में आकर बैठे।

(४) जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है, इस ग्रंथ की रचना सं० १६२० में हुई थी। उस वक्त ईसरदास पचीस वर्ष के थे। अतः एक नौजवान कवि की इस वीर रसात्मक रचना में ओज गुण की प्रधानता होना स्वाभाविक है। परन्तु 'हरिरस' आदि इनकी रचनाएँ शान्तरस की हैं और ढलती उम्र में लिखी गई हैं। एक वृद्ध कवि की रचना में भाव की गम्भीरता तो रहती है, पर ओज उतना नहीं रहता। ऐसी दशा में ईसरदास की वीररस की कविता की तुलना उनकी शान्तरस की, और वह भी वृद्धावस्था की, कविता से करना और फिर यह निष्कर्ष निकालना कि ये दो भिन्न कवियों की रचनाएँ हैं, हमारे ख़याल से युक्ति विरुद्ध ही नहीं, उपहास्य भी है।

सारांश कि 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' को ईसरदास-रचित न होने की जो बात उठाई गई है वह तथ्यहीन एवं कोरी कल्पना है और उसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। वस्तुतः यह ग्रंथ ईसरदास ही का लिखा हुआ है, उनके काका आशानंद का रचा हुआ नहीं।

हालाँ झालाँ रा कुंडळिया कोई क्रमबद्ध, कथायुक्त, ग्रंथ नहीं है। हिंदी-कवि भूषण कृत 'शिवा बावनी' के ढंग का यह एक संकलन-ग्रंथ है जिसमें वीर जसाजी की प्रशंसा में लिखे हुए ईसरदास रचित फुटकर पद्य संगृहीत हैं। लेकिन 'शिवा बावनी' में और इसमें थोड़ा-सा अंतर है।

'गिघा यावधी' एक वर्णनात्मक ग्रंथ है, और यह भावात्मक। इसके प्रायः सभी छंदों के पहले दो चरणों में कोई मौलिक भाव अथवा सिद्धांत वाक्य कहा गया है, जिसे बाद के चरणों में जसाजी अथवा उनके वीर साथियों आदि पर घटा कर विकसित किया गया है। यथा—

हिरणाँ छाँवी सींगड़ी भाजण तणौ सभाव।
सूराँ छोटी दाँतळी दे घणा थट्टाँ घाव॥
घाव घण थटाँ अत पिसण दळ घालणौ।
पाँच सै पाखराँ हेकलौ पालणौ॥
राण जसवंत सो राखिया विरणिया।
हाक वागी तठै कूदि गा हिरणिया॥

अधिकांश छंद इसी तरह के हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो केवल वर्णनात्मक हैं। जैसे—

ऊठि अचूंका बोलणा नारि पयंपै नाह।
घोड़ाँ पाखर धमधमी सींधू राग हुवाह॥
हुवौ अति सींधवौ राग वागी हकाँ।
थाट आया पिसण थाट लागै थकाँ॥
धजाडाँ ओति खग झरि वडा खोलणा।
ऊठि हर' धधळ सुत अचूंका बोलणा॥

इस ग्रंथ का यह नाम 'हालाँ झालाँ रा कुँडळिया' स्वयं ईसरदास का रखा हुआ है या बाद में किसी दूसरे व्यक्ति ने हालाँ-झालाँ संबंधी उनके रचे फुटकर पद्यों को एकत्र कर यह नाम दे दिया है, इसका पता नहीं लगता। दोनों ही संभावनाएँ हैं। परन्तु इनमें से किसी एक के पक्ष अथवा विपक्ष में कुछ कहने के लिए यथेष्ट सामग्री उपलब्ध नहीं है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह नाम है काफी प्राचीन। कम से कम २०८ वर्ष का पुराना तो है ही। क्योंकि इस ग्रंथ की प्राचीनतम प्रति (सं० १६९८) में यह नाम मिलता है।

कुछ लोग 'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' को सूर सतसई भी कहते हैं। परंतु यह नाम अभी अभी प्रचलित हुआ है। प्राचीन लिखित प्रतियों में यह कहीं दिखाई नहीं देता। यह नाम भ्रामक भी है। क्योंकि 'सतसई' नाम से इसमें सात सौ पद्यों का होना सूचित होता है जो इसमें नहीं हैं।

यह ग्रंथ मूल में कितने पद्यों का था इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। इसकी प्राचीनतम प्रति जो हमारे देखने में आई है वह सं० १६९८ की लिखी हुई है। इसमें कुल ५० पद्य हैं। इसके बाद की प्रतियों में से कुछ में ५० और कुछ में ५० से कम पद्य मिलते हैं। सिर्फ एक प्रति ऐसी देखने में आई है जिसमें ५० से अधिक पद्य हैं। यह उदयपुर के सरस्वती भंडार की प्रति है। इसमें ५३ पद्य हैं। अतः तीन पद्य अधिक हैं। परतु इन तीन सिवाय पद्यों का विषय इस ग्रंथ के विषय के साथ मेल नहीं खाता। यह ग्रय वीररस का है; लेकिन इन पद्यों में एक पद्य शृंगार रस का और दो नीति विषयक हैं। वे पद्य ये हैं—

सजन गुणां समंद हो तिर तिर थक्की तेण।
अवगुण विंट न संपजे रहूँ विलंबे जेण॥
विलंबी रहूँ हूं विंट अवगुण जिहो।
निज गुणां तुहाळा पार लाधे नहीं॥
घण वित्त कय की मौह तजवे घणों।
समंद चौ पार लाधौ नहीं साजणाँ॥

डूँगरिया रा वाहळा ओछाँ तणाँ सनेह।
वहता वहे उतावळा छिटक दिखा छेह॥
छेह दाखे छिटक घणाँ कोधाँ गमै।
पाँच दिन प्रीत कर सर्वां रूठां समै॥

(१) ऊठि अद्धंगा बोलणा, कामणि आखै कंत ।
ऐ हर्लां तो ऊपरां, हूँकळ कळळ हुवंत ॥
(२) मूछां वायं फुरूकिया, रसण सबूकै दंत ।
सूतौ सैला धौ करै, हूं बळिहारी कंत ॥

उस वक्त तक अरबी-फ़ारसी के काफ़ी शब्द डिंगल में घुल-मिल गये थे और डिंगल के कवि स्वच्छंदता पूर्वक उनका प्रयोग करते थे। अतः इस ग्रंथ में भी अरबी-फ़ारसी के शब्द यथेष्ट मात्रा में पाये जाते हैं। परंतु इन शब्दों का प्रयोग ईसरदास ने तत्समरूप में नहीं किया है; उन्हें डिंगल की प्रकृति के अनुकूल परिवर्तित कर काम में लिया है। जैसे—जहर (ज़हर), बगतर (बख़्तर), सूरति (सूरत), फौज (फ़ौज), निजर (नज़र) इत्यादि।

इस ग्रंथ में केवल एक प्रकार का छंद, कुंडलिया, व्यवहृत हुआ है। हिंदी में एक ही तरह का कुंडलिया प्रसिद्ध है। परंतु डिंगल में इसके चार भेद माने गये हैं—झड़उलट, राजवट, शुद्ध और दोहाळा। ईसरदास ने अपने इस ग्रंथ में झड़उलट कुंडलिया का प्रयोग किया है।

इस कुंडलिया में प्रथम तो दोहा और फिर बीस-बीस मात्राओं के चार पद होते हैं तथा चतुर्थ पद को पाँचवें पद में उलट दिया जाता है। जैसे—

घोड़ां हींसन भल्लिया, पिय नींदड़ी निवारि ।
वैरी आया पाधरा, दळ थंभ तूझ दुवारि ॥
दळ थंभ तुझ दुवारि झुंझारी धवळ तणा ।
घणां विरदां वहण आविया अरि घणा ॥
घणा नींदाळवां नींद वारौ धणी ।
तूंग नहछै भली हींस घोड़ां तणी ॥

ईसरदास को अलंकारों का इष्ट न था। इनके सभी ग्रंथों में अलं-

कारों का प्रयोग प्रायः कम देखने में आता है। इस ग्रंथ में भी अलंकार विशेष नहीं हैं।।

डिंगळ काव्य का एक प्रमुख अलंकार 'वैण सगाई' के नाम से प्रसिद्ध है। इसे हिंदी के शब्दानुप्रास का एक भेद कह सकते हैं। अनुप्रास की तरह इसके भी कई भेद-उपभेद हैं। वैण सगाई का एक सामान्य नियम यह है कि एक छंद के एक चरण के प्रथम शब्द का आरंभ जिस वर्ण से हुआ हो उसके अन्तिम शब्द का आरंभ भी उसी वर्ण से होना चाहिए। ईसरदास ने इस नियम का, वैण सगाई का, अच्छा उपयोग किया है और इसकी बड़ी सुन्दर छटा इस ग्रंथ में स्थान-स्थान पर देख पड़ती है। यथा—

(अ) पिलंग सहारिया पौढियौ, काळौ भलो कहाय।
लख जोपण साजे जसौ, मणिमथ फौज मवहाय॥

(आ) चढि पोरिस वर सोह चढि, चढि रिय तोरणि चाकि।
कुँवारी थए कइतळा कूँक भार भुज झाकि॥

इसके अर्थालंकारों के विषय में कोई विशेष बात कहने की नहीं है। रूपक, व्याजस्तुति, स्वभावोक्ति इत्यादि दो-चार अलंकारों के उदाहरण इस ग्रंथ में मिलते हैं, पर इनको लाने के लिए इन्हें चेष्टा करनी पड़ी हो ऐसा सूचित नहीं होता :

(१) जसवँत-गुरड न उड्डही, ताळा-अजड तयोह।
हाळवियाँ इया हुवै, पंछी अवर पुयोह॥

—रूपक

(२) देक पराया जव चरौ, हालौ ऊगा सूर।
दादाला भूँडण भयौ, मागौं भाखर दूर॥

—व्याजस्तुति

(३) ग्रीष्मणि दीयै दुबवडी, सबळी चंपै सीस।
पंख झपेटां पिउ सुवै, हूँ बळिहारि थईस॥
—स्वभावोक्ति

ईसरदास जन्मसिद्ध कवि थे। यह ग्रंथ उनकी अद्भुत कवित्वशक्ति का परिचायक है। इसमें निम्नलिखित काव्योचित विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं।

विशुद्ध काव्य की दृष्टि से यह एक अत्यन्त अनूठी रचना है। जहाँ तक भाव की मौलिकता का प्रश्न है डिंगल का दूसरा कोई ग्रंथ इसकी तुलना में नहीं ठहरता। यह अप्रतिम है। इसमें ५० पद्य हैं। इनमें एक भी पद्य ऐसा नहीं है जिसका भाव ईसरदास ने अपने किसी पूर्व-वर्ती अथवा समकालीन कवि की रचना से लिया हो। सभी भाव नये हैं और बड़ी मनोहरता से व्यक्त किये गये हैं।

इन पद्यों में से अधिकांश को ईसरदास ने स्त्री के मुँह से कहलवाया है वीर जसाजी की राणी अपने पति, अपनी सखी इत्यादि के सामने अपने हृदयोद्गार प्रकट कर रही है। इससे वर्णन में बड़ी स्वाभाविकता एवं कोमलता आ गई है और सारी की सारी रचना भाव-सौन्दर्य्य से जगमगा उठी है :—

(क) सैल घमोड़ा किम सह्या, किम सहिया गज दंत।
कठिण पयोहर लागताँ, कसमसतो तूँ कंत॥

(ख) सखी अमीणा कंथ री, औ इक बड़ो सभाव।
गळियाराँ ढीलौ फिरै, ढोला वागाँ राव॥

ईसरदास भाषा और भाव के सामन्जस्य को खूब समझते थे और विषय के अनुरूप शब्द-चयनमें प्रवीण थे। इनका एक-एक पद्य एक-एक फोटोग्राफ है। जो वर्ण्य विषय को साकार रूप में हमारी आँखों के सामने ला खड़ा करता है। झाला रायसिंह जसाजी से लड़ने के लिए झोळ की ओर अग्रसर हो रहे हैं। जसाजी की राणी उनको चेतावनी

दे रही है इसका वर्णन निम्नलिखित पद्य में देखिये। पढ़ते समय ऐसा भान होता है मानो आगे बढ़ते हुए रायसिंह और चेतावती देती हुई राणी दोनों हमारे सामने हैं, राणी मना कर रही है और गर्वोन्मत्त रायसिंह आगे बढ़ते ही चले जा रहे हैं—

धीरा धीरा ठाकुराँ, गुम्मर कियाँ मजाह।
महँगा देसी झूँपड़ा, जो घरि होसी नाह॥
नाह महँगा दियण झूँपड़ा निमै नर।
जावसी कदतळाँ केमि जरसी जहर॥
रूक हथ पेखिसी हाथ जसराज रा।
ठिवंवा पाँव धीरा दियौ ठाकुराँ॥

इसी तरह का एक और शब्द-चरित्र देखिये। रायसिंह की सेना झोळ जा पहुँची है। योद्धा शोरगुल कर रहे हैं। सिंधू राग गाया जा रहा है। परन्तु जसाजी निश्चिंत पड़े सो रहे हैं। इस पर उनकी राणी उनको जग जाने के लिए कह रही है—

ऊठि अढंगा बोलणा, कामणि आखै कंत।
अै हल्ला तो ऊपराँ, हूँकळ कळळ हुवंत॥
हूँकळे सिंधवो वीर कळहळ हुवै।
वरण कजि अपछराँ सूरिमा वह छुवै॥
त्रिजड़-हथ मयद सुध गयंद घड़ तोलणा।
ऊठि हर धवळ सुत अढगा बोलणा॥

पूरी तस्वीर है, और तस्वीर भी बोलती हुई। 'हूँकळै' शब्द में सिंधूराग की और 'कळहळ' में वीरों की चीख़-चिल्लाहट की ध्वनि साफ़ सुनाई पड़ रही है।

एक अच्छी कविता का गुण है, सजैस्टिवनैस। अर्थात् किसी बात को संकेत द्वारा व्यक्त करना। जिस कविता में यह गुण जितना अधिक पाया जायगा वह कविता उतनी ही अधिक उत्तम मानी जायगी।

ईसरदास की कविता में यह गुण यथेष्ट मात्रा में मिलता है। उदाहरण—

> घुड़ला रुधि भकोळिया, ढीला हुआ सनाह।
> रावतियाँ मुख झाँखणाँ, सहीक मिळियौ नाह॥

'मेरे पति के साथ तुम्हारा युद्ध हुआ है और तुम पराख हुए हो', इस बात को सीधी तरह न कह कर कवि ने शत्रु योद्धाओं के घोड़ों को रक्तासिक्त, उनके कवचों को ढीला और उनके चेहरों को उदास बतलाकर उनकी हार होना सूचित किया है।

यह ग्रंथ लोकप्रिय भी कम नहीं है। विशेषकर चारण लोगों पर इसका बहुत गहरा प्रभाव देखने में आता है। चारणों में शायद ही कोई ऐसा अभागा चारण मिलेगा जिसे इसकी दो चार उक्तियाँ कंठस्थ न हों। अनेक चारण कवियों ने इसके भावों को ग्रहण किया है। और तो और, बाँकीदास तथा सूरजमल की रचनाओं में भी, जो अपनी मौलिक उक्तियों के लिए प्रसिद्ध है, इसका प्रभाव स्पष्ट देख पड़ता है। दो-चार उदाहरण लीजिए—

> सादूळौ आपा समौ, बियौ न कोय गिणंत।
> हाक बिराणी किम सहै, घण गाजियै मरंत॥
>
> —ईसरदास

> अवर री अग्राज सु, केहर खीज करंत।
> हाक धरा ऊपर हुई, कैम सहै बळवंत॥
>
> —बाँकीदास

> केहरि मरूँ कळाइयाँ, रुहिरज रचदिग्रांह।
> हेकणि हाथळ गेहणै, दंत दुहत्था ज्यांह॥
>
> —ईसरदास

> केहर कुंभ विदारियौ, तोड़ दुहत्था दंत।
> रुहिर कळाई रत्तकी, मदतर तै महकंत॥
>
> —बाँकीदास

माल्हंती घरि आंगणै, सखी सहेली साथि ।
जो जाणूँ पिय भवहणौ, तौ मरूँ संग्रामि ॥

—ईसरदास

घर आंगण साहै घणा, आसै पड़ियाँ ताव ।
जुध आंगण सोहै जिकै, बालम ! वास वसाव ॥

—बाँकीदास

ओझण दीयै दुलवड़ो, खमळो धपै सीस ।
पंख झपेटाँ पिउ सुवै, हूँ बळिहार थईस ॥

—ईसरदास

कंकाणी चंपै चरण गीधाणी सिर गाह ।
मो विण सूती सेजरी, रीत न छंडै नाह ॥

—सूरजमल

सेल घमोड़ा किम सह्या, किम सहिया गजदंत ।
कठिन पयोहर लागताँ, कसमसतौ तूँ कंत ॥

—ईसरदास

करड़ा कुच नूँ भाखती, पड़घा हंदी चोळ ।
अब फूलाँ जिम आंग मैं, सेलाँ री घमरोळ ॥

—सूरजमल

नैनाणी ढीली धकै, मो कंथ तणौ सनाह ।
विकसै पोयण फूल जिम, पर दळ दीठां माह ॥

—ईसरदास

आळस जाणै पेस मैं, घप ढीलै विकसंत ।
सीधू सुणियाँ सौ गुणी, कवच न मावै कंत ॥

—सूरजमल

चोळी छीलन मलिया, पिय नींदड़ी निवारि ।
वैरी आया पावणा, दळ थँभ दूझ दुवारि ॥

—ईसरदास

घण आखै जाणौ घणी, हूँकळ कळळ हजार।
विण नूतारा पाहुणा, मिळण बुझावै बार॥

—सूरजमल

सखी अमीणा कंत रौ, अंग ढीलौ आचंत।
कड़ी ठहक्कै बगतरॉं, नड़ी नड़ी नाचंत॥

—ईसरदास

सुण हेली ढोलै सहज, लेणी पड़वै लोय।
कंत सजतां सौ गुणौ, कड़ी बजंतां कोय॥

—सूरजमल

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, ईसरदास ने सब मिलाकर १२ ग्रंथ रचे हैं। परन्तु इनमें यही एक ऐसा ग्रंथ है जिसकी गणना काव्य में की जा सकती है। यदि यह ग्रंथ न रचा गया होता तो ईसरदास को कवि कहने में भी संकोच होता।

संपादक

हालाँ झालाँ रा कुंडळिया

१

हालॉ झालॉ होवसी सीहॉ लत्थौवत्थ ।
धर पैलाँ अपणावसी कै अपणी पर हत्थ ॥
करै धर पारकी आपणी जिकै नर ।
केवियॉ सीस खग-पाण करणा कचर ॥
सत्रहरॉ नारि नहँ नींद भरि सोवसी ।
हलचलॉ सही हालॉ घरै होवसी ॥ १ ॥[1]

शब्दार्थ—हालॉ=हालावंशी क्षत्रिय; जसाजी । झालॉ=झालावंशी क्षत्रिय; रायसिंह । होवसी=होगी । लत्थौवत्थ=गुत्थम-गुत्था; भिड़न्त । पैलॉ=दूसरों की; पराई । अपणावसी=अपनाएँगे; अधिकार मे करेंगे । कै (काय)=क्या । पारकी=

---

१. RD हाला झाला । C लथोथय । CRD अपणावस्या । C आपाणो । RA आपणड़ां । S काय आपणी । D नहँ अपणो । C हथ । C आपको । RDS जिके । D केविआँ । SA दोयणां । C पाणि । RS सत्रौहर, A सत्रां चां । ADRS नार । ADR नर । RD हाला । C घरे ।

पराई; शत्रु की। आपणी = अपनी। जिकै = जो। केवियाँ = शत्रुओं की। खग = खड्ग। पाण = बल; हाथ। करण = करने वाला। कचर = चूर-चूर; विदीर्ण। सत्रहराँ = शत्रुओं की। सोवसी = सो सकेगी। हलचलाँ = उपद्रव, लड़ाई। सही = निश्चय ही।

भावार्थ—हालों (जसाजी) और झालों (रायसिंह) की सिंह वत् गुत्थम गुत्था होगी। वे पराई धरती को अपनाएँगे। अपनी पराये हाथ में क्या जाने देंगे? जो मनुष्य पराई धरती को अपने अधिकार में करता है, जो शत्रुओं के सरों को खड्ग-बल से विदीर्ण करनेवाला है, उसके शत्रुओं की नारियाँ भर नींद नहीं सो सकेंगी। निश्चय ही हालों के घर हलचल होगी।

२

धीरा धीरा ठाकुराँ गुम्मर कियाँ म जाह।
महँगा देसी झूँपड़ा जै घरि होसी नाह॥
नाह महँगा दियण झूँपड़ा त्रिभै नर।
जावसौ कड़तळाँ केमि जरसौ जहर॥
रूक-हथ पेखिसौ हाथ जसराज रा।
ठिवंतों पाव धीरा दियौ ठाकुराँ॥ २॥

शब्दार्थ—गुम्मर = गर्व। म = मत। जै = जो। दियण = देना; देनेवाला। त्रिभै = निर्भय। कड़तळ = भाला, राजपूतों की

---

२. C ठाकुरे। C भूजर; S घूमर; D गुमर। A मोहेंगा। RD झोंफड़ा, S झोंपड़ा। CS जो। AS घर। CS जावस्यौ। RS केम। CRD जरस्यौ। ARD पेखस्यौ, S स वस्यौ। CDS ठवंतां, R रमतां। AS पाँव। RD दिये, C दीयो।

एक शाखा का नाम । जावसौ = जाओगे । केमि = कैसे । जरसौ = पचाओगे । रूक = तलवार । रूक हथ (ै) = खड्गधारी । पेखिसौ = देखोगे । रा = का । ठिवताँ = चलते हुए; रखते हुए । पाव = पाँव, पैर ।

भावार्थ—(हाला जसाजी की स्त्री झाला रायसिंह को संबोधित कर कहती है) हे ठाकुर ! धीरे-धीरे चलो । गर्व करते हुए मत जाओ । यदि मेरे निर्भय पति घर पर हुए तो वे अपने झोंपड़ों को बहुत महंगे मोल पर देंगे । हे झाला ! जाकर कैसे तुम जहर को पचाओगे । तुम खड्गधारी जसराज के हाथों को देखोगे । हे ठाकुर ! चलते हुए अपने पाँवों को धीरे-धीरे रखो । अर्थात् पाँवों की आहट मत होने दो ।

३

घोड़ाँ हींस न भल्लिया पिय नींदड़ी निवारि ।
वैरी आया पावणाँ दळ-थँभ तूझ दुवारि ॥
दळ-थँभ तुझ दुवारि झुँझारि धवळ तणा ।
घणाँ विरदाँ लहण आविया अरि घणा ॥
घणा नींदाळवाँ नींद वारौ घणी ।
तूंग नहँ छै भली हींस घोड़ाँ तणी ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—हींस = हिनहिनाहट । भल्लिया = भली, शुभ ।

३—RDA घोड़ा । C हींसन । R हींसण । A हींसन । S हींस न भल्लियाँ । C भलीयां । C पाव, RDS पीय । AS निद्दड़ी । ARSD निवार । AR काय वैरी काय पावणाँ, D पामणा । ARSD दुवार । RD झुझार । C धमळै, RD धवळइ । S लहण । RD अर । ASD नींदाळवाँ । SRD वारूँ । ARS नहचै, D न हुवै ।

नींदड़ी = निद्रा । निवारि = छोड़ । पावणा = पाहुने, अतिथि । दळथंभ = सेना के स्तंभ-स्वरूप; भारी; विकट । झूंझारि = योद्धा; लड़ाके । धवळ = हरधौळ; जसाजी के पिता का नाम । तणा (तण) = तनय, बेटा । घणा = बहुत । विरदाँ = यश; कीर्ति । लहण = लेने को, लेनेवाले । विरदाँ लहण = यशस्वी । नींदाळवाँ = निद्रालु । वारौ = छोड़ो । घणी = बहुत । तूंग (सं० उत्तग) = ऊँची, भारी । छै = है । भली = अच्छी; शुभ । तणी = की ।

भावार्थ—(जसाजी की स्त्री कहती है) हे पति ! द्वार पर घोड़ों की जो हिनहिनाहट हो रही है वह शुभ नहीं है । तुम नींद को छोड़ दो । विकट वैरी पाहुने बनकर तुम्हारे द्वार पर आये है । हे हरधोळ के पुत्र ! बड़े यशस्वी योद्धा शत्रु बहु संख्या में तुम्हारे दरवाजे पर आये हैं । हे बहुत निद्रालु ! बहुत नींद को त्यागो । घोड़ों की ऊँची हिनहिनाहट अच्छी नहीं है ।

टि०—'घोड़ा हींसण भल्लिया' । राजस्थानी भाषा में 'भलना शब्द 'फैल जाना' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है । जैसे 'खेत भली गियो है,' 'वाड़ भली गी है' इत्यादि । यदि उक्त 'भल्लिया' शब्द का यहाँ यह अर्थ लिया जाय तो R प्रति के हींसण' पाठ को ग्रहण करना पड़ेगा और तब 'घोड़ा हींसण भल्लिया' का अर्थ होगा—घोड़ों की हींस फैल गई है अर्थात युद्धार्थ आये हुए वीरों के घोड़े तुम्हारे द्वार पर हींसने लग गये हैं । अब नींद निकालने का अवसर नहीं है । उठो ।

टि०—अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में 'नहचै' पाठ है । यदि इस पाठ को ग्रहण किया जाय तो 'तूंग नहचै' का अर्थ होगा—निश्चय ही सैन्य-समूह है । नहचै = निश्चय ही । तूंग = (सैन्य) समूह । इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग डिंगल ग्रंथों में देखने में आता है । जैसे—

(१) "खग बाँध चढ़ै अस तूंग खड़ा।"
(२) "तिण वार मिळै नह टळै तूंग।"
(३) "लखि फौज तूंग लड़ंग।"

टि०—यदि 'तूग' को संस्कृत 'तूंगी' (रात्रि) का रूपान्तर माना जाय तो 'तूंग नह छै' का 'अब रात्रि नहीं है' अर्थ भी किया जा सकता है।

४

ऊठि, अचूंका बोलणा नारि पयंपै नाह।
घोड़ाँ पाखर धमधमी सींधू राग हुवाह॥
हुवौ अति सोंधवौ राग वागी हकाँ।
थाट आया पिसण घाट लागै थकाँ॥
अखाड़ाँ जीति खग अरि घड़ा खोलणा।
ऊठि हरधवळ सुत अचूंका बोलणा॥ ४॥

शब्दार्थ—अचूंका = अचिंतित, निशंक; बेफिक्र। बोलणा = बोलनेवाले। पयंपै = कहती है। नाह = नाथ; पति। पाखर = झूल। धमधमी = धमधमा उठी है; बहुत तप गई है। सींधू राग = वीर रस वर्द्धक एक राग विशेष। वागी = बजी; हुई। हकाँ = हाँक। थाट = समूह। पिसण = शत्रु। घाट = घात; दाँव। घाट लागे थकाँ = घात लगाये हुए। खग = खड्ग। घड़ा = सेना। खोलणा = तहस नहस करनेवाला; बिखेरनेवाला।

भावार्थ—जसाजी की स्त्री अपने पति से कहती है कि हे

४. S ऊठ। C अचूका। ARD अचींका। SRD नार। A पइंपै। ARD हुवाह। RD हुवे। S अत। SRD प्रिसण। A लागतो। SRD जीत। AD हिणधवळ।

निशंक बोलनेवाले ! उठ। घोड़ों की पाखरें बहुत गरमा गेई हैं और सिंधू राग हो रहे हैं। हॉक बज उठी है। घात लगायाँ हुआ शत्रु समूह आया है। हे अखाड़ों को जीतनेवाले, शत्रु-सैन्य को तहस-नहस करनेवाले, निशंक बोलनेवाले, हरधोळ-सुत, उठ।

५

ऊठि अढंगा बोलणा कामणि आखै कंत।
अै हल्ला तो ऊपरॉ हूँकळ कळळ, हुवंत॥
हूँकळै सीधवौ वीर कळहळ हुवै।
वरण कजि अपछरॉ सूरिमॉ वह वुवै॥
त्रिजड़-हथ मयंद जुध गयंद-घड़ तोलणा।
ऊठि हरधवळ सुत अढंगा बोलणा॥ ५॥

शब्दार्थ—अढगा = विकट। बोलणा = बोलनेवाला। कामणि = स्त्री। आखै = कहती है। अै = यह। ऊपरॉ = ऊपर। हल्ला = आक्रमण, दौड-धूप, आवाज। हूँकळ = हुंकार। कळळ = शोरगुल। हूँकळ कळळ = हाथी-घोड़ों, योद्धाओं आदि की मिली-जुली चीख-चिल्लाहट। हुवत = हो रही है। हूँकळै = गूँज रहा है; हो रहा है। कळहळ = वीर शब्द। कजि = लिए। अपछरॉ = अप्सराओ को। वह = वहु; बहुत। वुवै = फिर रहे हैं, घूम रहे हैं। त्रिजड = तलवार। हथ = हाथ। त्रिजड़-हथ = खड्गधारी।

---

५ SRD कामण। S ए। ARD ये। D उपरा। C वो परि हुवै। CR हौंकलै। A राग (वीर)। AD कल्हळ। C कळिपळ। S कज। S सूरमा। SR पहु। AC वहै (घुवै)। ASD मईंद। ASD गहद। RD घड़। AGRD रणधवळ।

मयंद = सिंह । गयंद-घड़ = गज-सेना । तोलण = तौलने वाले; मूल्यांकन करनेवाले, मारनेवाले ।

भावार्थ—जसाजी की स्त्री कहती है कि हे विकट बोलनेवाले ! उठ । यह आक्रमण तेरे ऊपर है । शोर-गुल हो रहा है । सिंधू राग गूँज रहा है । वीरों का कोलाहल हो रहा है । अप्सराओ का वरण करने के लिये बहुत से योद्धा फिर रहे हैं । युद्ध मे गज-सेना को मारनेवाले, खड्गधारी, मृगेन्द्र, हरधोळ-सुत, विकट बोलनेवाले ! उठ ।

६

काळौ मंजीठी कियॉ नइणै नींदालुद्ध ।
अंबर लागौ ऊठियौ विढवा वंस विसुद्ध ॥
वंस विसुद्ध वरीयाम साम्हौ विढण ।
घणा दिसि दोइणॉ म्हॉलियौ विरद घण ॥
थूरहथ धवळरौ थाट मैं वट थियौ ।
काळ-चाळौ चखॉ चोळबोळाँ कियौ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—काळौ = काल; यमराज, मतवाला । मंजीठी कियाँ= मजीठ के रग का अर्थात् लाल किये हुए । नींदालुद्ध = निद्रालु; नींद का लोभी, नींद लिये हुए । विढवा=लड़ने को । वरीयाम= श्रेष्ठ, जोरावर । साम्हौ=सामने; समक्ष । घणा=बहुत । दिस =

६. SR मजाठै, D मजींठे । C किये । CRSD नयणे । ACR नींदालुध । D नींदालूध । CR चिढसी । ACR विसुध । SRD सामो । SR दिस । C दुरजणाँ, SRD दोयणाँ । S थूल । RD धमळ । S में । S मट । SRD थिया । SRD काळौ । A चोळ वरणे । C चोळ लोचन कीयौ ।

तरफ़; दिशा। दोह्रणाँ=शत्रु। म्हालियौ=आनंद-पूर्वक घूमा। विरद=यश; ख्याति। थूरहथ=छोटे हाथवाला। धवळरौ=हरधोळ का बेटा। थाट=(सैन्य) समूह; सेना। वट=वट-वृक्ष के समान फैला हुआ, बड़ा। थियौ=हुआ। काळ-चाळौ=युद्ध में काल स्वरूप। चोळ बोळाँ=चोल के समान रंगा हुआ, रक्तवर्ण।

भावार्थ—वह मतवाला, निद्रालु, विशुद्ध वंशवाला, अपनी आँखों को लाल किये हुए उठा और आकाश से जा लगा। अनेक दुश्मनों की ओर आनद पूर्वक घूमकर उसने भारी यश सचित किया। छोटे हाथवाला, हरधोळ का पुत्र, जसाजी, सैन्य-समूह में वट-वृक्ष के समान विस्तीर्ण हो गया। युद्ध में काल स्वरूप उस जसाजी की आँखें चोल के समान लाल रग की हो गईं।

७

माल्हंतौ घरि आंगणै सखी सहेलौ ग्रामि।
जो जाणूँ पिय माल्हणौ जै मल्है संग्रामि॥
ग्रामि संग्रामि भूँझार माल्है गहड़।
अरि घड़ा खेसवै आप न खिसै अनड़॥
घाइ भांजै घड़ा खाग त्राछै घणौ।
मेर मांझी जसौ हेक रिण माल्हंणौ॥ ७॥

शब्दार्थ—माल्हतौ=आनद की मौज में धीरे-धीरे मस्त चाल से चलना; मल्हाना। सहेलै=आसान। माल्हणौ=आनंद से

७. S [illegible] [illegible]। A मालता घर आयौ सखी सुहेलौ गांम। C पिय। A [illegible]। S [illegible] (भूँझार)। AD अरि दळ। AR CS [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मांजै घणौ। CR जिसौ। RAD

घूमनेवाला; आनंदी । माल्हे=मल्हावे । गहड़=उद्धत । खेसये = गिराता है । घड़ा=सेना । खिसै=गिरता है । अनड़=अनम्र । घाइ= घाव । भाँजे=भंजन करता है । घड़ा=सेना । खाग = तलवार । ग्राछै = काटता है । घणौ = वहुत । मेर = मेरू पर्वत । मांभी = मुखिया; जोरावर । हेक = एक ।

भावार्थ—हे सखी ' अपने गाँव और घर के आँगन मे मल्हाना सहज है । मैं तो अपने पति को मल्हानेवाला तब समझूँ जब वहा संग्राम में मल्हावे । उद्धत योद्धा ही सग्राम-रूपी गाँव में मल्हात है । वह अनम्र वीर शत्रु सेना को गिराता है और खुद नहीं गिरता है । वह घाव देकर सेना का भंजन करता है और खड्ग से बहुत काट करता है । मेरू पर्वत के समान मुखिया जसाजी ही रण में मल्हाने वाला है ।

८

एकौ लाखां आंगमैं सीह कहीजै सोय ।
सूरॉ जेथी रोड़ियै कळहळ तेथी होय ॥
कळळ हूँकळ अवसि [खेति सूरा करै ।
धीरपै सुहड़ रिण चलण धीरा धरै ॥
आगि ग्रजागि जसवंत अकळावणौ ।
खाग बळि एकलो लाख दळ खावणौ ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—आंगमै=आक्रमण करता है; गालिब होता है;

न RC येकौ, D हेकौ । ACR रोड़ीयै । CDR कळीयळ । SRD जेथ, A खेत । ARC भड़ (रिण) । AC वरजागि । CDR ग्रभियावणौ । A ग्रगयावणौ । CS खड़ग । RD बळ । ARS एकलो, C येकलौ, D हेकलौ । C खेसणौ ।

सहन करता है। कहीजै=कहना चाहिए। सूरौं=वीरों को। जेथी=जहाँ; जिधर। रोड़ियै=घेर लेता है। तेथी=वहाँ; उधर। फळहळ=कोलाहल। कळळ-हूंकळ=शोरगुल। अवसि=अवश्य। धीरपै=धैर्य देते हैं। सुहड़=सुभट। चलण=चाल; गति। आगि अजागि=बिजली की आग, वज्र की अग्नि। अकळावणौं=निर्द्वन्द्व; घबरा देनेवाला, अकुला देनेवाला। खाग=खड्ग।

भावार्थ—सिंह उसी को कहना चाहिए जो अकेला लाखों की बराबरी करता है; वह जिधर शूरों को घेर लेता है उधर कोलाहल हो जाता है। अवश्य ही रणभूमि पर योद्धा शोरगुल करने लगते हैं। वह युद्ध में वीरों को धैर्य देता है और धीमी चाल से चलता है। निर्द्वन्द्व जसवत वज्र की आग है। वह अपनी तलवार के बल से अकेला एक लाख सेना को खानेवाला है।

९

सादूळौ आपा समौ बियौ न कोय गिणंत।
हाक बिडाणी किम सहै घण गाजियै मरंत॥
मरै घण गाजियै जिकौ सादूळ महि।
सत्रां चा ढोल सिर सकै किम जसौ सहि॥
वयण घण सांभळै रहै किम वीसमौ।
सुपह सादूळ कुणि गिणै आपा समौ॥ ९॥

शब्दार्थ—सादूळौ=शार्दूल, सिंह। आपा=अपने। समौ=समस्त, समान। बियौ=दूसरा। कोय=किसी को। हाक=हाँक;

१ CSRD सादूंळो। AS बोजो D कोइ। SR कवण। D गाजियाँ। ARD जास, S जासु। S मह। CRD रा (चा)। RD सुण (सिर)। AS सह। A वहण। RD समळे। A सकौ (सुपह)। S आपह।

हुँकार; आवाज़। विडाणी = पराई; दूसरें की। घण = बद्दल जिकौ = जो। महि = पृथ्वी। सत्राँ चा = शत्रुओं के। सिर = सिर पर; ऊपर। किम = कैसे। सहि = सहन करना। वयण = आवाज़। साँभळ = सुनकर। वीसमौ = विषम; विस्मित, विभ्रात। सुपह = राजा। कुणि = कैसे। गिणै = गिनता है।

भावार्थ—शार्दूल अपने सामने किसी दूसरे को कुछ नहीं गिनता। वह दूसरों की हुँकार तो सहे ही क्या? घन गर्जन से ही मरता है। जो शार्दूल पृथ्वी पर बद्दलों की गड़गड़ाहट से ही मरता है, वह (जसाजी) शत्रुओं के ढोल को अपने सर पर बजता हुआ कैसे सह सकता है? वह विषम वीर घन-गर्जन को सुनकर कैसे रह सकता है? राजा शार्दूल अपने सामने किसे गिनता है?

टि० 'वयण घण साँभळै रहै किम वीसमौ' का यह अर्थ भी किया जा सकता है—'घन-गर्जन से विभ्रान्त होकर वह कैसे रह सकता है?

१०

सीहणि हेकौ सीह जणि छापरि मंडै आळि।
दूध विटाळण कापुरस बौहळा जणै सियाळि॥
घणा सियाळि जे जणै जंबूक घणा।
तोहि नहँ पूजवै पाण केहरि तणा॥
धूणि खग ऊठियौ अभंग साम्हौ धणी।
सीह जसवंत जिसौ हेक जंणि सीहणी॥१०॥

---

१० SD सीहण। R हेको। SD जग। SD छापर। SRD आळ। A विटोळण। A बौहळा। RD घणू। AR जंबक। SRE तोय। A नहिं A पाँणे। RD धूण। A साँमा। SRD जण।

शब्दार्थ—हेकौ = एक । जणि = जन्म दे; पैदा कर । छापरि = खुला मैदान । मडै = रचता है । आळि = खेल; घेरा । विटाळण = भ्रष्ट करनेवाले; लज्जित करनेवाले । कापुरुष = कायर; नीच घौहळा = बहुत, बहुलता से । सियाळ = शृगाल; सियार । घणा = = बहुत । जबूक = गीदड़, सियार । तोहि = तो भी । पूजवै = बराबरी करते हैं । पाण = बल । तणा = का । घूणि = घुमाकर । खग = तलवार । अभंग = निडर । जिसौ = जैसा । साम्हौ = सामने । धणी = पति । सीह = सिंह । हेक = एक ।

भावार्थ—हे सिंहनी ! एक सिंह को जन्म दे जो खुले मैदान में खेल खेलता है । दूध को भ्रष्ट करनेवाले कायर तो सियारी बहुत पैदा करती है । सियारियाँ बहुत हैं जो बहुत गीदड़ों को जन्म देती हैं । तो भी वे सिंह के बल को बराबरी नहीं कर पाते हैं । तलवार को घुमाकर निर्भय पति सामने खड़े हुए हैं ' हे सिंहनी ! जसवत जैसे एक ही सिंह को जन्म दे ।

११

केहरि मरूँ कळाइयाँ रुहिरज रत्तड़ियाँह ।
हेकणि हाथळ गै •हणौ दंत दुहत्था ज्याँह ॥
दंत दुहत्था ज्याँह हाथियाँ सबळ दळ ।
आवधाँ अरहरां चूर करणौ अकळ ॥
रोळसी खळदळाँ चखाँ रातंबरी ।
कळायाँ मरूँ त्याँ जसौ गज केहरी ॥ ११ ॥

११ SRD केहर । A मरो । AU रोहिज । SRD हेकण । CR गज । C दुहथां । C ज्यौंह । A दोहहाथ । A त्यौं थपरिण । CRD आवधे । C अरियणां । AR आोहण । CR करतो । SRD खळांदळ । C चखे । C कळाये ।

शब्दार्थ—मरूँ=मरता हूँ; न्योछावर हूँ। कळाइयाँ=प्रकोष्ठ; हाथ की कलाइयो पर। रत्तड़ियाँह= रक्तवर्ण। हेकणि=एक। हाथळ=हाथ का पंजा। गै=हाथी। हणै=मारता है। दुहत्था= दो हाथ लंबे। ज्याँह=जिसके। आवधाँ=आयुध। अरहराँ= शत्रु के। अकळ=पूर्ण।\रोळसी=उपद्रव करेगा; खलवली मचाएगा। खळदळाँ=शत्रु-दल। रातंबरी=लाल। कळायाँ=कळाइयाँ।

भावार्थ—हे सिंह! मैं रुधिर से भरी हुई तेरी लाल रंग की कलाइयों पर न्योछावर हूँ। तू अपने पंजे के एक ही प्रहार से हाथी का हनन करता है जिसके दो हाथ लंबे दाँत होते हैं। तू दो हाथ लंबे दाँतवाले हाथियो के सबल दल को, शत्रुओं के आयुधों को, पूर्णरूप से नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला है। रक्तवर्ण की आँखोवाला तू शत्रु दल में उपद्रव करेगा। हे हाथी के लिए सिंह स्वरूप जसाजी मैं तेरी कलाइयों पर न्योछावर हूँ।

१२

केहरि केस भमंग-मणि सरणाई सुहड़ाँह।
सती पयोहर कृपण धन पड़सी हाथ मुवाँह॥
मूवाँहिज पड़सी हाथ भमंग-मणि।
गहड़ सरणांइयाँ ताहरै गैडसणि॥
काळ ऊभौ जसौ सकै नेड़ा करी।
कुणि सती पयोहर मूछ लै केहरी॥१२॥

१२—SRD केहर। CRD भुयंग। S मिण। CRD पयोधर। CRD विम। A इम। C जिम। ACR सरणाइयाँ। SC गैडसण। C करै। A कुंण त्रियै सतीय मूंछ कुच केंहरी। C हाय गज केहरी।

शब्दार्थ—भुमंग = सर्प । सरणाई = शरण, शरणागत । सुहड़ाँह = बहादुरों के । मूवाँहिज = मरने पर ही । गहड़ = गाढ़ा बलवान । ताहरै = तेरे । गैड़सणि = वाराह । नेड़ा = नजदीक ।

भावार्थ – सिंह के केस, सर्प की मणि, बहादुरों के शरणागत सती के स्तन और कृपण का धन उनके मरने पर ही हाथ लगते हैं । हे वाराह ! सर्प की मणि और वीरों के आश्रित मरने पर ही तेरे हाथ आएँगे । जमराज रूपी काल खडा है । कौन उसके नजदीक जा सकता है ? कौन सती के पयोधर और सिंह की मूँछ को ले सकता है ?

टि० अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है । गैडसणि अर्थात् वाराह से यहाँ कवि का संकेत जसासी के प्रतिद्वन्द्वी रायसिंह की ओर है ।

१३

सखी असीणा कंथ रौ अंग ढीलौ आचंत ।
कड़ी ठहकै बगतराँ नड़ी नड़ी नाचंत ॥
नड़ी नाचै भिड़ै छोह लोहा भिळै ।
ऊससै सुबप मुख मूँछ भोहाँ मिळै ॥
खगाँ उनगाँ पिसण पाड़ि ऊभौ पड़ौ ।
कहूँ इण भाँति ढीलौ सखी कंथड़ौ ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—असीणा = हमारा । रौ = का । आचंत = अचिंत्य, अत्यंत, अत्यधिक । ठहकै = टूटती है । नड़ी = नस, नाड़ी । छोह=

१३ SD कत । RS राचंत । D अतंत । A सखी असीणो कन्तको अंग ढीलडो अनंत । RD ठहके । D खडी सखी । SRD घडे । A तोहां । SD पाडे । S ऊँच ।

मुँह वाली। आमिखचरॉ = माँसभक्षिणी। साम्हौ = सामने; समक्ष धणी = स्वामी; पति। आकुळी = आकुल, व्यग्र; बेचैनी। किम = कैसे; क्यों।

भावार्थ—हे गिद्धनी! उतावली क्यों है? घोड़ा कस रहा हूँ। धीरज रख। हे रक्तमुखी, मॉस-भक्षिणी! युद्ध में या तो मैं तुझे शत्रु के सर पर बैठाऊँगा या अपने शरीर पर अर्थात् या तो मैं शत्रु को मारूँगा जिससे तू उसके सर पर बैठकर उसका माँस खा सकेगी या लड़ता हुआ खुद मारा जाऊँगा (रण से भागूँगा नहीं) जिससे मेरा मॉस भक्षण कर सकेगी। तू भूखी नहीं रहेगी। सामने घोड़ा कसते हुए स्वामी कहते हैं कि हे गिद्धनी! आकाश मार्ग में बेचैन क्यों फिर रही है।

१५

थोड़ा बोलौ घण सहौ नहचै जो नेठाह।
जो परवाड़ा आगलौ मित्र करीजै नाह॥
नाह इसड़ा नरॉ वात विगड़ै नहीं।
घणा मझ घातियॉ भार झालै घणौ।
बहुत अवगुण कियाँ थोड़हो बोलणौ॥ १५॥

शब्दार्थ—बोलौ = बोलने वाला। नहचै = निश्चय ही। नेठाह = निशानी; लक्षण। परवाड़ा = प्रवाडा, युद्ध। आगलौ = अग्रणी। इसड़ा = ऐसे। सोन = सोना। जिकौ = जो। पूजै = पूरी उतरती है। मझ = में। घातियॉ = शत्रुओ के। झालै = ग्रहण करते हैं; उठाते हैं। घणौ = बहुत।

---

१५ SARD बोलण। A नाह सो मित्र कर बुरो होसी नहीं। RD कवसटो। S साच पूगै। A में (मझ)। S मज। AR बौहोत। S अवगण। RD औगण। A थोड़ हो।

भावार्थ—हे पति ! यह निश्चय ही ठीक निशानी है कि जो अधिक सहन करनेवाला होता है वह कम बोला करता है। ऐसे युद्ध में अग्रणी को अपना मित्र बनाना चाहिए। हे पति ! ऐसे मनुष्यों से बात नहीं बिगड़ती। सोने की कसौटी पर वे ठीक उतरते हैं। बहुत शत्रुओं के बीच में वे भारी बोझ को उठाते हैं। बहुत बोलना अवगुण है। थोड़ा बोलना चाहिए।

१६

ल्यावै लोड़ि पराइयाँ नहँ दै आपणियाँह।
सखी अमीणा कंथ री उरसाँ झूँपड़ियाँह॥
लोड़ि धर वीर वर पराई ल्यावणा।
आपणी न दै भड़ जिकै अधियामणा॥
वरण कजि अपछरा वाट जोवै खड़ी।
ज्याँ भड़ाँ तणी झिग्लै उरस झूँपड़ी॥१६॥

शब्दार्थ—ल्यावै=लाता है। लोड़ि=छीनकर। पराइयाँ=दूसरों की। आपणियाँह=अपनी। अमीणा=हमारा। कंथ=कंत। उरसाँ=आकाश में; स्वर्ग में। जिकै=जो। ल्यावणा=लाते हैं; लानेवाले। अधियामणा=जबरदस्त; जोरावर। वरण=विवाह। कजि=लिए। अपछरा=अप्सरा। झिग्लै=शोभित होती है। भड़ाँ=बहादुर। जोवै=देखती है। वाट=रास्ता ज्याँ=उन। तणी=की।

१६—ARD वावै। SD लोड़। S नहै RD जिनां दंदी हे सखी। RD झींपड़ीयाँह। ARD लावणाँ। S आपरी, RD जिके। S कज। D अपछरां। AR झूलै।

भावार्थ—हे सखी ! मेरे पति की झोंपड़ी आकाश में है। वे दूसरों की धरती को छीन कर लाते हैं। और अपनी नहीं देते हैं। इनसे विवाह करने के लिए अप्सरा खड़ी प्रतीक्षा करती रहती है। ऐसे बहादुरों की झोंपड़ी आकाश में शोभित होती है।

१७

सखी अमीणा कंत रौ औ इक वड़ौ सुभाव।
गळियारां ढीलौ फिरै हाकां वागां राव॥
वाजियां वीर-हक विहस लागै विढण।
विलम न धारै करतॉर अपछर वरण॥
आवरत जसौ अरि घड़ा अभ्रियामणौ।
ताइ हे सखी सभाव कंता तणौ॥ १७॥

शब्दार्थ—अमीणा=हमारा। औ=यह। गळियारां-गलबहियाँ, गलियों में। विहस = जोश से। विढण = लड़ने। करतॉर=करने में। आवरत= घेरा होता हुआ युद्ध, मडलाकार घेरने वाली सेना। घड़ा = सेना। अभ्रियामणौ=जबरदस्त। ताइ = ऐसा।

भावार्थ—हे सखी ! मेरे कंत का यह एक बहुत बड़ा स्वभाव है। गलबहियाँ में तो वह ढीला रहता है पर हाँक होने पर राव हो जाता है। वीर-शब्द होने पर वह बहुत जोश से लड़ने लगता है और अप्सराओं का वरण करने में देरी नहीं करता है। घेरा होते

---

१७ SRD कथ। R चौ। S यो। CSR यक। SC सुमाव। SRD गळिहारां। SRD वहै। C ढोलाँ। A वहसि। D लागौ। ARD सुख नहीं करै। C भारतस। SRD अर। D पे। SRD कथा।

हुए युद्ध में जसाजी शत्रु-सैन्य के लिए बहुत जबरदस्त है। हे सखी ! ऐसा मेरे कंत का स्वभाव है।

१८

जसवँत गुरड़ न उड्डही ताळी त्रजड़ तणेह ।
हाकलियाँ ढूला हुवै पंछी अवर पुणेह ॥
हुवै पँखराव जिम वीर हाकालियाँ ।
थरहरै कायराँ उवर ढीला थियाँ ॥
छोह करताळियाँ चिड़कला छड्डही ।
अभंग जसवँत जुध गुरड़ नहँ उड्डही ॥ ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—गुरड़ = गरुड़। उड्डही = उड़ना है। ताळी = ताली। त्रजड़ = तलवार। तणेह = की। हाकलियाँ = हाँक लगाने पर। ढूला = गुड्डा; शिथिल; निस्तेज; भयभीत। हुवै = होकर। अवर = अन्य। पुणेह = सुन कर। पंखराव = गरुड़। उवर = उर; हृदय। थियाँ = होकर। छोह = क्रोध; क्षोभ। करताळियाँ = हाथ की तालियाँ। चिड़कला = पक्षी। अभंग = निर्भय। छड्डही = छोड़ते हैं।

भावार्थ—तलवार-रूपी ताली से जसवंत रूपी गरुड़ नहीं उड़ता। हाँक लगते ही दूसरे पक्षी निस्तेज होकर भाग जाते हैं। वीर-हाँक होने पर वह (जसवंत) गरुड़ जैसा हो जाता है। कायरों के हृदय ढीले होकर थरथराते हैं। हाथ की तालियों के

---

१८. ARD गरड़। AR उड्हा। D हुवे। RD पखी। R अउर, D श्रौर। A हाकालयाँ ढील। हुवाँ पखी नांहि पयेह। D केविर्या A उरद। A वाजियाँ खाग जसराज घेढांमगी। उवि पड़े छिलक्किला जेम मर्घायामणी।

२१

सांई एहा भीचड़ा मोलि महूँगै वासि ।
ज्याँ आछन्ना दूरि भौ दूरि थकाँ भौ पासि ।।
रहै किमि पासि भौ राखियाँ रावताँ ।
स्यामि रै कामि हणवँत जिसा सावताँ ।।
खत्री गुर वासिया मोलि महूँगा खरा ।
अरि घड़ा भाँजिसी भीच जसवंत रा ।। २१ ।।

शब्दार्थ—एहा = ऐसे । भीचड़ा = सुभट; बहादुर । वासि = निवास; पड़ोस । ज्याँ = जिनके । आछन्ना = पास रहते हुए । किमि = कैसे । भौ = भय । दूरि थकाँ = दूर रहते हुए । रावताँ = राजपूत सरदार, शूर । स्यामि = स्वामी । हणवँत = हनूमान । सावताँ = सामंत । खत्री = क्षत्रिय । गुर = बड़े; भारी । वासिया = बसाये । भीच = सुभट । भाँजिसी = भंजन करेंगे; नष्ट करेंगे; परास्त करेंगे । रा = का ।

भावार्थ—हे सांई ! ऐसे बहादुर बहुत महँगे मोल पर मिलते हैं जिनके पास रहने से भय दूर, और दूर रहने से भय पास रहता है । स्वामी के काम के लिए हनूमान जैसे शूर-सामन्तों को पास रखने से भय कैसे पास रह सकता है ? खरे और महँगे मूल्य पर बड़े क्षत्रियों को निकट बसाया है । जसवत के वीर शत्रु-सैन्य का भजन करेंगे ।

---

२१. A इहा, CRD येहा । C भीचड़ा । S मोल । S मूँहगे, RD मोहँगे । SRD वास । A असामा, C आसना, S आसना । RA भय । S दूर । SRD पास । S भव । SRD काम । CS सामतां । CRD वासीया । S मोल । SRD मुहँगे । S खर । A खड़ा । SAR भाजसी । C भीछ ।

२२

सिणगारी सन्नाह सूँ विसकामणि वरियाम ।
वरि आई हाला वरण करण महा जुध काम ॥
काम संग्राम ची हाम जुध कामणी ।
घणा नर जोवती भोमि आई घणी ॥
महाबळ धवळरा साहि वरमाळ तूँ ।
सबळ घड़ कड़तळाँ घणा सन्नाह सूँ ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—सिणगारी = शृंगार की हुई, सजी हुई । सन्नाह = कवच; जिरह-बख्तर । सूँ = से । विसकामणि = विष कामिनी, विष कन्या । वरियाम = श्रेष्ठ । वरि = वरण कर । हाला = हाला वंशी; जसराज । वरण = विवाह । करण = करने को । ची = का । हाम = इच्छा । घणा = बहुत । जोवती = देखती हुई । भोमि = भूमि । घणी = बहुत । महाबळ = महाबली । धवळरा = हर भोळ का पुत्र; जसाजी । साहि (सं० साध्) = धारण कर । वरमाळ = वरमाला । घड़ = सेना । कड़तळाँ = भालों की ।

भावार्थ—युद्ध के महान कार्य करनेवाले हे हाला (जसाजी) जिरह बख्तर से सुसज्जित (झाला रायसिंह की सेना रूपी) विष कन्या से, जो तुझसे विवाह करने आई है, व्याह कर । युद्ध-कार्य की इच्छुक सेना-रूपी यह कामिनी अनेक वीरों को देखती हुई

---

२२. A सिणगारो, CR सिंणगारिया । AC सनाह, S सिनाह । CR सौ । S वसकामण, RD विसकामण । SRD वर । A हालाँ । AS मंन । C गम । SRD मह । A जोवसी । S भोम । C सुंग । SRD साह । AR घणे ।

तेरी भूमि पर पहुँची है। हे हरधोळ के महाबली पुत्र ! भालाओं की जिरह बख्तर से बहुसज्जित सबल सेना-रूपी विष-कन्या की वरमाल को तू ग्रहण कर अर्थात उसे हराकर विजय वैजयंती पहन।

टि०—विष कन्या। वह स्त्री जिसके शरीर में इस आशय से कुछ विष प्रविष्ट कर दिये गये हों कि जो उसके साथ संभोग करे वह मर जाय। यहाँ कवि ने इस शब्द का प्रयोग रायसिंह की सेना के अर्थ में किया है।

२३

फेरा लेतै फिर अफिर फेरी घड अणफेर।
सीह तणी हरधवळ सुत गहमाती गहडे़र॥
गहड़ घड़-कामणी करै पाणै ग्रहण।
करगि खग वाहतौ जुवा जूसण कसण॥
कोपियै छाकियै वहर भड़ अहर करि।
फुरळतै पिसण घड़ फेरवी अफिर फिरि॥ २३॥

शब्दार्थ—फेरा = भाँवर, विवाह के समय की परिक्रमा। फिर=फिरकर, घूमकर। अफिर=न फिरनेवाला, न मुड़नेवाला। फेरी = मोड़ दी। घड़ = सेना। अण फेर = न फिरने वाली। सीह= रायसिंह। तणी = की। गहमाती = गर्वोन्मत्त। गहडे़र = विकट गंभीर। गहड़ = गभीर; उद्धत। घड़-कामणी = सेना रूपी स्त्री।

---

२३. SR अफर। C स्यव। CR गहै मती। SRD भड़। AR करै। AD वाहतौं। SRD तग वगतर। A कोप्रिई। SRD कहर। SRD कर। AR फेरतै। SD प्रसण। SRD फर।

पाणै ग्रहण = पाणि ग्रहण; विवाह । करगि = हाथ । खग=तलवार । वाहतौ = चलाता हुआ । जुवा = अलग । जूसण = जिरह; बख्तर; कवच । कसण=कसन; बंद । कोपियै=कुपित होकर । छाकियै = छककर; भरकर । चहर = श्रेष्ठ; उत्तम । भड़=वीर । अहर = असमर्थ; बेकाम । फुरळतै = स्फूर्ति से । पिसण = शत्रु । फेरवी = मोड़ दी; पीछे हटा दी ।

भावार्थ—हे हरधोळ के पुत्र, युद्ध से न फिरने वाले (जसाजी)! भाँवरी के समय परिक्रमा से फिरकर तू ने रायसिंह की न फिरने वाली, गर्वोन्मत्त और उद्धत सेना-रूपी कामिनी को फेर दिया। इससे पाणिग्रहण कर अर्थात भिड़कर अपने हाथ से तलवार चलाकर तू ने उसके कवच (रूपी अंगिया) के बंद अलग कर दिये । क्रोध में भरकर तू ने श्रेष्ठ वीरों को बेकाम कर दिया और स्फूर्ति से शत्रुओं की न फिरनेवाली अर्थात् अजेय सेना को मोड़ दिया ।

२४

चढ़ि पोरिस वर सोह चढ़ि चढ़ि रिण तोरणि चालि ।
कुंवारी घड़ कड़तळाँ झूँझ भार भुज झालि ॥
झालियै भार झूँझारि भुजि झालियै ।
पाट ऊधौर हालाँ वखत पालियै ॥
पौह घणा भागलाँ गई मुहराइ पड़ि ।
चाव गुर जसौ जिण वार वर सोह चढ़ि ॥ २४ ॥

२४. S चढ़ । RD पोरस । RA चढ़ि । DA झूझ वरण । A कंवारी । C झूझ । A झालिई । C भाले । CR अखित । SRD पोर । C जसै । CR तिणि ।

भावार्थ—युद्धाभिलाषी, रणवीर, स्वामी-सहायक, अद्वितीय वीर और युद्ध में शत्रुओं को मारनेवाले वीका और सोम की प्रशंसा हुई। हाथ में तलवार धारण किये हुए और युद्ध में शत्रुओं का संहार करते हुए समर्थ वीर सोम और वीका को शूरवीरों ने सराहा। लड़ते हुए दोनों वीर टुकड़े-टुकड़े होकर ढह गये। रायसिंह के इन बंधुओं की बड़े राजाओं ने प्रशंसा की।

३०

हेक पराया जव चरौ हालौ ऊगॉ सूर।
दाढाळा भूँडरा भरौ भागौ-माखर दूर॥
दूरि दळ देख जसवंत थइयौ दई।
कोड़ लग पाखऱ्या कटक आयौ कई॥
हाक कुणि करै जसवंत सूँ हलचलौ।
उडियॉ लोह अंबर अड़ै हेकलौ॥ ३०॥

शब्दार्थ—हेक=एक। हालौ=चलते हो, निकलते हो। दाढाळा=सूअर। भूँडण=शूकरी। भाखर=पर्वत। थइयौ=हुआ। दई=दैव। कोड़=उमग; जोश। पाखर्याँ=बख्तर युक्त घोड़े व सवार; घुड़ सवार। हलचलौ=हल चल करने वाला; ऊधमी; उद्धत। लोह=हथियार।

भावार्थ- शूकरी कहती है कि हे शूकरो! एक तो तुम परायों के खेत में जौ चरते हो और दूसरे सूर्योदय हो जाने पर खेत से बाहर निकलते हो। परन्तु याद रखो कि तुम्हारा निवास-स्थान पर्वत दूर है। (इतने में) दूर से सैन्य-समूह, उमंग से भरे हुए

३०, RD एक। AR जौ। AD चालौ, R भागौ। S डाढाळा। RD परवत। S क्रोड़। RS कुण। RD ऊड़िया। RD एकलौ।

गई हुई सवारों का दल, आया देख कर जसवंतसिंह दैत्य के समान प्रबल हो गया। उद्धत जसवंत सिंह के सामने कौन हुँकार कर सकता है? हथियार चलने पर वह तो अकेला ही आकाश से जा लगता है।

टि०—इस में व्याज स्तुति अलंकार है। निंदा के बहाने सूअरी शूकर की प्रशंसा कर रही है। उसके कहने का अभिप्राय यह है कि हे शूकर! तुम इतने बहादुर हो कि दूसरों के खेत के जौ चरते हुए तुम्हें डर नहीं लगता। तुम रात में नहीं बल्कि दिन हो जाने पर भी बहुत देरी से, निशंक भाव से, जौ खाकर खेत के बाहर निकलते हो; और यह सब कार्य तुम अपने पड़ोस में नहीं बल्कि अपने रहने के स्थान से बहुत दूर दुश्मनों के बीच में जा कर करते हो।

३१

हे पणिहारी बापड़ी जहरी सूँ बर जाय।
केड़ै कटकाँ लूँबियाँ लायक मरसी आय॥
आवसी जिको नहँ जावसी अपूठौ।
महा मैमंत काळौ चखाँ मजीठौ॥
अणी चढ़ि खेति जसवंत सूँ आहुड़ी।
पिय नखै पौढ़सी नहीं पणिहारड़ी॥३१॥

शब्दार्थ—बापड़ी=बेचारी; बापुरी। सूँ=से। बरजाय=बर्जा हुआ है। केड़ै=पीछे। कटकाँ=सेनाओं के। लूँबिया=बँधने पर; लगने पर। मरसी=मरेगा। [illegible]। आवसी=आयगा।

३१. SR बन्दडी। D
SRD जिको।--S नहि। E
D नखै। R नखै।

निवड़ = अत्यंत; अद्वितीय। भड़ = बहादुर। घणा = बहुत। पाड़तौ = गिराता हुआ। सोभियौ = शोभायमान होता है। विहसतै=जोश में। जाय उबड़ै = उखड़ जाती है; टूट जाती है। सहस = हज़ार गुना। घाट = आकार। रै = के। जरद=कवच।

भावार्थ—हे बहिन! (लोहारिन)! मेरे पति के कवच को ढीला घड़। वह अद्वितीय वीर पराई सेना को देखकर इस तरह खिलता है जिस तरह कमल का फूल (सूर्य को देखकर खिलता है)। वह महाभट बहुत वीरों को गिराता हुआ बहुत शोभायमान होता है। जोश में हज़ार गुना बल बढ़ जाने से कड़ी टूट जाती है। पति के शरीर के आकार का ढीला कवच घड़।

टि०—एक प्रति में 'बैनाणी' की जगह 'बेहाणी' पाठ है। डिंगल भाषा में 'बेहाणी' का अर्थ है, लोहार। कवच बनाने का काम लोहार का है, लोहारिन का नहीं। परंतु 'घड़ै' क्रिया स्त्रीलिंग की सूचक है। इसलिए हमने 'बैनाणी' पाठ को ग्रहण किया है। स्त्री अपने मन की बात स्त्री ही को अधिक कहती है। इसलिए भी यह पाठ अधिक ग्राह्य है। कविता की दृष्टि से तो इसमें अधिक कोमलता है ही।

३४

केहरि छोटो बहुत गुण मोड़ै गयँदां माण।
लोहड़ बड़ाई की करै नरां नख़त परमाण॥
नखत परमाण बाखाण बांधौ नरै।
आवगौ भूँझ रौ भार भुजि आपरै॥
मेटणौ मीड़ भुंजि गयंद री मोटियाँ।
छावड़ बळ हतै कळाइयाँ छोटियाँ॥३४॥

३४. SRD केहर। S छोटो। RD बोहोत। SRD नखत्र। S आवगो। RD जूझरो। SRD भुज। S छावड़ा।

दार्थ—गयँदाँ=हाथियों के। मोड़ै=मर्दन करता है। मान। लोहड़=हथियार। की=क्या। नरां नखत पर० नक्षत्र के समान तेजस्वी पुरुष। परमाण=समान। नखद= । बाधौ=सब। आवगौ=पूरा। झूंभ=लड़ाई। मेटणौ= वाला। मोटियाँ=मोटी; भारी। छावड़ (सं० शाव प्र,० हि० छाव)=बालक। हतै=मार डालता है। कळाइयाँ= की कलाइयों। छोटियाँ=छोटी।

भावार्थ—सिंह छोटा पर बहुत गुणी होता है। वह हाथियों मान-मर्दन करता है। इसी तरह नक्षत्र समान तेजस्वी पुरुषों गे हथियार की क्या बड़ाई हो सकती है? सभी लोगों ह बखाना है कि नक्षत्र के समान तेजस्वी पुरुष ही लड़ाई पूरा बोझ अपनी भुजाओं पर धारण करता है। हाथियों बड़ी भीड़ को मिटानेवाला सिंह का बच्चा उनको अपने हाथों छोटी कलाइयों के बल से मार डालता है।

टि०—'नरां नखत परमाण' यह डिंगल भाषा का एक प्रचुर मुहावरा है। 'तेजस्वी पुरुष' के अर्थ में राजिया ने भी एक स्थल पर इसका प्रयोग किया है—

नरां नखत परमाण, [illegible] ।
बोझ [illegible], [illegible] राजिया ॥

लहिसी—लहेगा, २५
लस्थौबस्थ—गुत्थम गुत्था, भिड़त, १
लह—ले, ४७
लहण—लेने को, लेनेवाले, ३
लांबी—लंबी, ४०
लूंबियाँ—बंधने पर, लगने पर,३१
लोहि—छीनकर, १६
लोह—हथियार, ३०, ४५
लोहए—हथियार, ३४
लोहा—हथियार, १३, १७
ल्यावै—लाता है, १६
ल्यावणा—लाते हैं, लानेवाले, १३
वग्गि—वर्गीकृत, इकट्ठा, भीड़, २६
वट—वट-वृक्ष के समान फैला हुआ, वड़ा, ६
वयण—आवाज़
वरजाय—वरण हुआ है, ३१
वरण—विवाह, १६, २२
वरण—वर्ण, रंग, ४२
वरणागियौ—वर्ण, रूपरंग, ठाटबाट ४३
वरमाळ—वरमाला, २२
वरसोह—श्रेष्ठ, शोभायुक्त; सुंदर, दुल्हा, २४
वरि—वरणकर, २२
वरीयाम—श्रेष्ठ, ज़ोरावर, ६, २२
वागो—बजी, हुई, ४
वाट—रास्ता, १६, ४१
वाड़—वृत्तिका, कोट, ३२
वाधौ—सब, ३४
वात—कहानी, ४७
वारौ—छोड़ो, ३
वावियौ—वायु, ४५
वावै—चलाती है, ४४
वासि—निवास, पड़ोस, २१
वासिया—बसाये, २१
विकसै—खिलता है, बढ़ता है, ३[illegible]
विखंड—अस्तव्यस्त, नष्ट, ३२
विटाळण—भ्रष्ट करनेवाले, लज्जित करने वाले, १०
विड़ाणी—पराई, दूसरे को, ९
विढंता—लड़ते हुए, ४४
विढतो—लड़ते हुए, लड़ाके, योद्धा वीर, २५
विढवा—लड़ने को, ६
वित—वित्त, वृत्ति, ४७
विभाड़ै—नष्ट करते हैं, छिन्न भिन्न करते हैं, २०
विमळ—निर्मल, सुन्दर, ४५
विरंग—फीका, ३९
विराणिया—वीर, ४०
विरद—यश, ख्याति, ३,६

विसकन्या—विषकन्या, २५
विसकामणि—विष कामिनी; विष कन्या, २२, २७
विहसतै—जोश में, ३३
विहसै—जोश में भरकर; उमंगित हो रहे हैं, २०
विहूँ—दोनों, २९
वीर-कळहळ—वीरशब्द, ५
वीसमौ—विषम, विस्मित, विश्रान्त ९
वै—निश्चय ही, वह, ४३
सवै—दे, ४९
संपन्नौ—संपन्न हुआ, सफलीभूत हुआ, ३५
सकळा—सकल; सब, ४५
सत्र—शत्रु, १४, ४५
सत्रहरां—शत्रुओं की १
सत्रॉं चा—शत्रुओं के, ९
सथ—साथ में, ३६
सनाह—कवच, कवचयुक्त, २१, ३३, ३९
सन्नाह—कवच, ४२
समळी—चील, २८
समौ—समस्त, समान, ९
सरणाई—शरण, शरणागत, १२
सरस—सरिस, समान, ३६
सरवहियौ—क्षत्रियों की सरवैया शाखा का, २६
सरौं—बाण, २३, २४
सहि—सहन करना, ९
सही—निश्चय ही, १, १०
सहीक—निश्चय ही, ३९
सहै—सहन करता है, ३७
सहै—सब, ४६
सॉंभळे—सुनकर, ९
सांत—सामंत, १७
साजै—सजाकर, २७
सादूळो—शार्दूल, ९
सापुरूसॉंरा—सत्पुरूषों का, ५०
सावळॉं—भाले, १६
सामठा—मज़बूत, २८
साम्हौ—सामने, ६, १०, १४ ३५,४
सार—तलवार, ४२
सारांहिया—सराहना की, २९
सावतॉं—सामंत, २१
साहि—धारणकर, २२
सिंघ—सिंह, ३६
सिणगारी—श्रृंगार की हुई; स हुई,
सियाळ—श्रृगाल, सियार, १०
सिर—सिरपर, ऊपर, ९, १५
सींगाळी—सींगवाला, ३२
सींधूराग—वीर रसगद्द'क एक विशेष, ४,

सीह—सिंह, १०
सींह-तणी—रायसिंह की, २२
सुजि—वह, ४७
सुपह—राजा, ९, ४७
सुवप—शरीर, १२, १७
सुवर—सुन्दर, पति, ४९
सुहड़ाह—योद्धाओं के १२, ४४
सुहेलौ—सहल, आसान, ७
सूँ—से, २२, ३१
सूता—सोया हुआ, ४५
सूरति—सूरत, आकृति, स्वरूप, २५
सूरा—वीरों को, ८
सूरौं—सूअरों के, ४०
सेल—भाला, १९, ४२, ४५
सो—वह २६
सोक—वृष्टि, बौछार, मार, ४२
सोन—सोना, १५
सोभियौ—शोभायमान होता है, ३२
सोवसी—सो सकेगी, १
सोहड़—सुभट, ८
सोहड़ा तणां—बहादुरों की, ४७
स्यामि—स्वामी, २१, २७
स्रोण—रक्त, ४४
हंदी—की, २८
हकाँ—हाँक, ४
हणवत—हनुमान, २१
हणै—मारता है, ११
हतै—मार डालता है, ३४
हथ—हाथ, ५
हलचलां—उपद्रव, लड़ाई, १
हलचलौ—हलचल करनेवाला, ऊधमी, उद्धत, ३०
हल्ला—आक्रमण, दौड़धूप, आवाज़; ५
हाक—हाँक, हुँकार, ९, ३८
हाकळियाँ—हाँक लगने पर, १८
हाथळ—हाथ का पंजा, ११
हाथळै—पंजे से, ४६
हाम—इच्छा, २२
हाला—हालावशी क्षत्रिय, १, २२, २४
हालौ—चलते हो, निकलते हो, ३०
हींस—हिनहिनाहट, ३
हुवत—हो रही है, ५
हुवै—होकर, १८
हू—मैं, ४५, ४६
हूँकळ—हुँकार, ५
हूँकळ कळळ—चिल्लाहट, ५
हूँकळे—गूँज रहा है, हो रहा है, ५
हेक—एक, ७, १० ३०, ३२
हेकणि—एक, ११
हेकलौ—अकेला, ४०
हेकौ—एक, १०
हेतणौ—प्रसन्न हुआ, ४३
हैजमा—सेना, ४१

॥ लेखक की अन्य कृतियों पर सम्मतियाँ ॥

राजस्थानी-साहित्य की रूपरेखा

१

पंडित मोतीलालजी मेनारिया एम. ए. ने 'राजस्थानी-साहित्य की रूपरेखा' नामक ग्रंथ लिखकर हिंदी-साहित्य का बड़ा उपकार किया है, इसमें संदेह नहीं। इससे पूर्व राजस्थानी साहित्य से संबंध रखनेवाला ऐसा सुगम, गवेषणा पूर्ण तथा ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टियों से उत्कृष्ट ग्रन्थ दूसरा नहीं लिखा गया। इसमें प्राचीन-काल से लगाकर अब तक के प्रायः सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजस्थानी साहित्यिकों का समावेश हुआ है। उनकी संक्षिप्त जीवनी के साथ-साथ इसमें प्रत्येक की शैली और विशेषताओं का अच्छा परिचय कराया गया है, जो राजस्थानी-साहित्य के विद्यार्थियों और जिज्ञासुओं के लिए बड़ा उपयोगी है। वर्तमान लेखकों और कवियों का संक्षिप्त परिचय इसकी विशेषता है। पुस्तक के अंत में परिशिष्ट के रूप में फुटकर कवियों की रचनाओं के अवतरण दिये गए हैं। राजस्थानी साहित्य के निर्माण में इनका भी बड़ा हाथ रहा है और इनमें से कितनों ही के नाम अब तक अज्ञात थे।

इस ग्रंथ के प्रणयन में लेखक ने काफ़ी श्रम किया है, विषय गंभीर होने पर भी इसमें कहीं-कहीं जटिलता अथवा दुरूहता नहीं आने पाई है। पुस्तक वस्तुतः बड़े मनोरंजक ढंग से लिखी गई है और आरंभ से अन्त तक लेखक की विद्वत्ता और विवेचना शक्ति का परिचय देती है।

हर्ष का विषय है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने इसे उत्तमा परीक्षा की पाठ्य पुस्तकों में स्थान दे दिया है। मुझे पूरा भरोसा है कि शीघ्र ही इसे हिंदी की अन्य परीक्षाओं में भी स्थान मिल जायगा।

मैं लेखक को ऐसा सर्वांग सुन्दर एवं उपयोगी ग्रंथ लिखने के लिए बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि वे भविष्य में भी इसी प्रकार हिंदी-साहित्य की अभिवृद्धि में प्रयत्नशील रहेंगे।

—गौरीशंकर-हीराचंद ओझा

२

The book contains a vast deal of important information, such as is only to be gained by long-continued study on the spot It will be especially useful to the students in Indian colleges and universities I used to long for such a book when I was in India

—George A Grierson

राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज

१

पं० मोतीलाल मेनारिया द्वारा लिखे गये 'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' नामक ग्रंथ का पहला भाग आलोचनार्थ हमारे सामने है। 'राजस्थानी-साहित्य की रूप रेखा' तथा 'डिंगल में वीर-रस' आदि पुस्तकें लिखकर मेनारियाजी पहले ही बहुत-कुछ प्रसिद्धि पा चुके हैं। अब इस ग्रंथ के द्वारा तो वे राजस्थान के उन साहित्य-सेवियों में अपना स्थान बना लेंगे, जो परिश्रम, अध्ययन और लगन के साथ अपने प्रान्त के प्राचीन साहित्य के शोध, उद्धार, सपादन तथा प्रकाशन के कार्य में लगे हुए हैं। उदयपुर का हिंदी-विद्यापीठ भी, जिसने राजस्थान-हिंदी साहित्य-सम्मेलन जैसे आन्दोलन को संगठित किया है, इस महत्वपूर्ण और खर्चीले कार्य के प्रारभ और अनुष्ठान के लिए निःसदेह प्रान्त के अभिनन्दन और श्रद्धा का भागी है। यदि राजस्थान में ऐसी दस पाँच सस्थाएँ भी स्थापित हो जायँ और एक सामान्य योजना बनाकर प्राचीन साहित्य के उद्धार के काम में लग जायँ

तो रत्नों के समान मूल्यवान राजस्थानी साहित्य केवल नष्ट होने से ही न बच जाय, बल्कि प्रान्त के नए साहित्यिक जागरण और उत्पादन में भी बहुत बड़ी सहायता मिले।

प्रस्तुत पुस्तक में उदयपुर राज्य के दो मुख्य भंडारों-सरस्वती-भंडार और वाणी-विलास तथा अन्य एक-दो निजी भंडारों के चुने हुए हस्तलिखित ग्रंथों का विवरण है। इसमें दिया १७० ग्रंथों और कुल मिला कर २०० प्रतियों का विवरण प्राचीन साहित्य के इतिहास तथा कथा वस्तु के अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त महत्व का प्रतीत होता है। इस विवरण-ग्रन्थ की मुख्य-मुख्य विशेषताएँ हैं—(१) अब तक की राजस्थान की प्राचीन साहित्य सम्बन्धी खोज के कार्य का तथा उसमें संलग्न व्यक्तियों का महत्वपूर्ण और रोचक विवरण (२) 'पृथ्वीराज रासो' की भिन्न-भिन्न ९ प्रतियों का विशद रूप से परिचय, (३) सूरदास, बिहारी आदि से सम्बन्ध रखनेवाली बहुमूल्य प्रतियों का उल्लेख (४) कई एक काम के नए ग्रन्थों का उल्लेख और कई एक नए तथा पुराने कवियों के अज्ञात ग्रंथों का परिचय। इसमें दिया गया नए कवियों का परिचय भी बड़ा उपयोगी है। ग्रंथों के चुनाव में भी सभी विषयों की ओर ध्यान रखा गया है। हाँ, डिंगल के ग्रंथ अवश्य ही इसमें कम दिए गए हैं, शायद अगले भागों में उनका आधिक्य रहे।

इस ग्रंथ का विषय-विवेचन मेनारियाजी की सर्वतोमुखी प्रतिभा और विद्वत्ता को प्रकट करता है। यह साहित्य-प्रेमियों के लिए निधि और साहित्यिक शोध में लगे विद्वानों के लिए सहायक और पथ प्रदर्शक सिद्ध होगा। आशा है, साहित्य प्रेमी मेनारिया जी के इस ग्रंथ से लाभ उठाकर उनका परिश्रम सफल करेंगे, जिससे वे और उनका विद्यापीठ इसके अगले भागों के सम्पादन और प्रकाशन में समर्थ हो सकें।

—विशाल भारत

२

हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का काम बहुत वर्षों से श्री नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा हो रहा है, और निश्चय ही सभा ने इस दिशा में न केवल पथ प्रदर्शन किया है वरन् बहुत मूल्यवान कार्य-संपादन किया है। फिर भी अभी इतना और काम करने को है कि अनेक संस्थाओं द्वारा यह कार्य अग्रसर किया जाय तो अच्छा हो। श्री मोतीलाल मेनारिया के सुझाव पर उदयपुर के हिंदी विद्यापीठ ने राजस्थान में हस्तलिखित हिंदी-पुस्तकों की खोज का प्रशंसनीय कार्य उठाया है, और मेनारिया जी द्वारा तैयार की हुई रिपोर्ट का जो पहला भाग हमारे सामने है उसे देखकर आशा बंधती है कि इससे हिंदी का निश्चय ही बड़ा हित होगा।

मेनारिया जी ने मेवाड़ के तीन प्रसिद्ध राजकीय पुस्तकालयों अर्थात् सरस्वती भंडार, सज्जन वाणी विलास, और विक्टोरिया हॉल लाइब्रेरी, की हिंदी-हस्तलिखित पुस्तकों के लिए मुख्यतया जाँच की। उनके परिश्रम के फलस्वरूप हमें १७५ ग्रंथों के परिचय प्राप्त हुए हैं। यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि इनमें ८० ग्रंथ बिलकुल नए हैं। यदि यह काम जारी रहा, और हमें पूरी आशा है कि जारी रहेगा, तो आगे चल कर हमें अवश्य ही और भी बहुत से नए ग्रंथों का पता चल सकेगा।

समालोच्य खोज-रिपोर्ट में पृथ्वीराज रासो सूरसागर, वेलि क्रिसन रुक्मणी री तथा बिहारी सतसई की एक से अधिक प्रतियों के परिचय मिलेंगे। मूल प्रतियों की सहायता से इन ग्रंथों के पाठ-शोध आदि में बड़ी सहायता मिलनी चाहिए। प्रत्येक ग्रंथ कहाँ सुरक्षित है यह भी इस रिपोर्ट में बता दिया गया है।

मेनारिया जी ने अपना कार्य बड़े मनोयोग और शास्त्रीय ढंग से संपादित किया है और इसके लिए वह हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

—सम्मेलन-पत्रिका

२

राजस्थान के लंबे चौड़े रेगिस्तान में जो विस्तृत हिंदी काव्य-सागर लहरा रहा है उसकी कुछ लहरों का परिचय हमें श्री मेनारियाजी ने इस किताब में दिया है। इसमें मेवाड़ के तीन किताब-घरों—सरस्वती भंडार, सज्जनवाणी विलास और विक्टोरिया हॉल लाइब्रेरी में रखी हुई हिंदी की हाथ लिखी किताबों की फहरिस्त और उनका परिचय दिया गया है। लेखक के शब्दों में इनमें सरस्वती भंडार सबसे पुराना और बड़ा किताब घर है। महाराणा भीमसिंह (सं० १८३४–८५) के वक्त में कर्नल टॉड ने इस किताब घर को टटोला था और कुछ किताबों की नकल करवाकर वे इङ्गलैंड ले गये थे। उसके बाद ठीक से किसी ने भी इसकी जाँच नहीं की। यह इस राह में पहला कदम है। और दो किताब घर छोटे-छोटे हैं। लेकिन छोटे होने से उनकी अहमियत कम नहीं हो जाती। उदयपुर के और प्राइवेट किताब घरों से भी लगभग दस किताबों के विवरण इसमें दिये गये हैं।

इस खोज-रिपोर्ट में जिन किताबों और कवियों का विवरण दिया गया है उनमें कुछ तो ऐसे हैं जिनका नामों-निशान हमें इसके पहले कहीं नहीं मिला था। कुछ किताबों की ऐसी पोथियाँ इस खोज-रिपोर्ट में दी गई हैं जिनकी अहमियत बहुत ज्यादा है। मलिक मुहम्मद जायसी को गौर से पढ़नेवाले रामचंद्र शुक्ल कृत जायसी ग्रंथावली पर कितना झुँझलाते हैं, यह उन्हीं के दिलों को मालूम है। लेकिन क्या करें ? न होने से तो काना पेटा ही भला होता है। इस खोज रिपोर्ट में जायसी की पदुमावती की एक पोथी का उल्लेख है। अगर उसको मूल प्रति मानकर सम्पादन किया जाय तो जायसी ग्रंथावली के पाठ से भिन्न पाठ तैयार होगा और शायद वह ज्यादा सच्चा होगा। पृथ्वीराज रासो की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। बिहारी-सतसई के छपे हुए सबसे अच्छे पाठ 'बिहारी-रत्नाकर' की भाषा में मेनारियाजी के

ी शब्दों में 'बिहारी की नहीं वरन् रत्नाकर की है'। इस खोज रि
में इन किताबों की अच्छी पोथियों का विवरण है।

पं० मोतीलाल मेनारिया ने बड़ी जिम्मेदारी के साथ इन पोथि
को पढ़ा और यह रिपोर्ट लिखी है। हमें आशा है कि नागरी प्रचा
सभा, काशी की तरह उन्होंने कहीं पर भी लापरवाही नहीं दिख
है। टैसीटरी के बाद राजपूताने में काव्य रस की धारा की खोज
यह पहली कोशिश है। हमारी कामना है कि हिंदी के विद्वान
पोर्ट से सच्चा लाभ उठावें और मेनारियाजी इस काम को और
ाकर पूरा करें। यह किताब का पहला हिस्सा ही है।

—विश्व

४

...... Looking to the gigantic character of
work to be done, and considering the meagre re
rces of the Udaipur Hindi Vidyapitha, or o
individual workers in the field, great credit is
to pandit Motilal Menaria M A., who has alr
published an interesting book named Di
men Vir Ras, for writing and publishing this
book, Rajasthan me Hindi ke Hastalikhit gran
ki Khoj He has devoted much time and ener
the discovery of old Hindi manuscripts in Raipu
and all lovers of Hindi literature are under
gation to him for the admirable work he is d
The present book "The Search for Hindi Man
pts in Rajasthan" is an important contribut